VIJNANA PARISHAD ANUSANDHAN PATRIKA

THE RESEARCH JOURNAL OF THE HINDI SCIENCE ACADEMY

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका

Vol. 34 July, 1991 No. 3

[कौंसिल आफ साइंस एण्ड टेकनॉलाजी उत्तर प्रदेश तथा कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च नई दिल्ली के आर्थिक अनुदान द्वारा प्रकाशित]

विषय सूची

Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, Vol. 34. No. 3, 1991

आदिम जनजाति बिरहोर के सोल डरमेटोग्लायफिक्स (तलवा का त्वचीय प्रतिरूप) का अध्ययन

डा० चतुर्भुज साहू
मानव विज्ञान विभाग
गिरिडीह कॉलेज, गिरिडीह (बिहार)

[प्राप्त—दिसम्बर 5, 1990]

सारांश

प्रस्तुत शोध कार्य बिरहोर के सोल प्रिंट का अध्ययन है। डरमेटोग्लायफिक्स रेखाओं का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट पता चलता है कि मुख्य रेखा E का अन्त एक ही क्षेत्र 13, A का अन्त दो क्षेत्रों में 1″ एवं 1′ में, D और C का अन्त तीन-तीन क्षेत्रों 1′, 1″ एवं 7 में तथा B का अन्त चार क्षेत्रों 1′, 1″, 7 एवं 9 में हुआ है। हेलुकल (थिनर/1) क्षेत्र में लूप डिस्टल दोनों ही पैरों में लगभग समान पाये गये हैं। इन्टरडिजिटल क्षेत्र II में लूप डिस्टल एवं ओपेन फील्ड की संख्या भी लगभग बराबर पायी गयी है। इसकी तुलना बिहार की ही दो प्रमुख जनजातियों मुण्डा एवं उराँव के साथ की गयी है। χ^2 जाँच से पता चलता है कि बिरहोर एवं मुण्डा के बीच कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है जबकि बिरहोर एवं उराँव में महत्वपूर्ण अन्तर पाया जाता है।

Abstract

Study of sol e dermatoglyphics of the Birhor (a primitive tribe). *By* Chaturbhuj Sahu, Department of Anthropology, Giridih College, Giridih, Bihar.

The present research work is a study of the sole dermatoglyphics of the Birhor. On analysing the dermatoglyphic lines it is discovered that the main line E has a single termination at 13, A has double termination at 1″ and 1′, whereas D and C are tri-ending lines namely at 1′, 1″ and 7 and B attains quadruped viz. 1′, 1″, 7 and 9. In the Hallucal sector equi-loop distals have been found in both the feet. In the inter digital area II loop distal and open field counterpoise each other in

space. It has been compared with two famous tribes—the Munda and the Oraon of Bihar. χ^2 (chi square) study reveals that in between the Birhor and Munda it makes no significant difference whereas in between the Birhor and the Oraon this counts.

डरमेटोग्लायफिक्स का अध्ययन मानव के लिए अति प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण विषय रहा है क्योंकि वे जानवरों के पदचिन्हों को देखकर उसका शिकार करते थे। ज्योतिषी भी हथेली की रेखाओं का अध्ययन करके भविष्यवाणी करते रहे हैं। इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक अध्ययन भी काफी पुराना है। 17 वीं शताब्दी में डॉ० नेहेमिया ग्रेव (1684), फेलो ऑफ द कॉलेज ऑफ फिजिसियन्स एण्ड सर्जन्स ऑल द रॉयल सोसायटी, इंगलैण्ड, प्रो० मारसेलो मालफिजी (1686), डिपार्टमेंट ऑफ एनाटोमी, बोलोन विश्वविद्यालय, इटली ने हथेली की वाह्य आकृति का वर्णन किया। 1823 में जोन एवेंगलिस्ट पुर्किजे ने डाक्टर ऑफ मेडिसिन (उपाधि) के लिए ब्रेसुल विश्वविद्यालय में त्वचीय प्रतिरूप (फिंगर प्रिंट) पर अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया। डॉ० हेनरी फाउड (1858), सुकुजी होस्पिटल, टोकियो ने जापानी तथा अन्य नागरिकों के त्वचीय प्रतिरूपों का अध्ययन करके प्रजातीय विभिन्नताओं की तुलना की। उसने यह भी सुझाव दिया कि इसके द्वारा अपराधियों को पहचाना जा सकता है। उसके बाद एनाटोमिस्ट, शारीरिक मानव वैज्ञानिक आदि लिंग एवं प्रजाति के आधार पर शोधकार्य प्रस्तुत करने लगे।

त्वचीय रेखाएँ अँगुली, हथेली एवं तलवा (सोल) पर निश्चित आकार के रूप में बनी होती हैं और अपरित्याज्य भी हैं। यह प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग होती हैं। मोनोजाइगोटिक जुड़वे बच्चे में भी ये अलग-अलग होती हैं। रेखाएँ भ्रूण के 13वें सप्ताह में ही अपना निश्चित आकार ले लेती हैं जो आजीवन अपरिवर्तित रहती हैं।

आजकल भारत में भी त्वचीय प्रतिरूपों पर शोधकार्य उपलब्ध हैं परन्तु तुलनात्मक रूप में बिहार में बहुत ही कम शोधकार्य हुआ है। बिहार की दो प्रमुख जनजातियों-मुण्डा एवं उराँव की अँगुली एवं हथेली के त्वचीय प्रतिरूप पर कुछ कार्य हुए हैं (वर्मा[1], मुखर्जी तथा चक्रवर्ती[2], चक्रवर्ती[3], दास शर्मा[4], दास शर्मा तथा साहू[5], शुक्ला तथा त्यागी[6])। इन्हीं जनजातियों के सोल प्रिंट पर दास शर्मा[7] के अतिरिक्त कोई अन्य कार्य नहीं हुआ है। आदिम जनजाति बिरहोर पर किसी भी प्रकार के त्वचीय प्रतिरूप का अध्ययन नहीं किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य बिहार के छोटा नागपुर क्षेत्र की बिरहोर एवं दो अन्य जनजातियों (मुण्डा एवं उराँव) का एक तुलनात्मक अध्ययन है।

प्रयोगात्मक

प्रस्तुत अध्ययन के लिए 100 बिरहोर मर्द (कुल जनसंख्या के 5% से ज्यादा) के सोल प्रिंट्स लिए गए हैं तथा उनका विश्लेषण कमिंस तथा मिडलो[8] के आधार पर किया गया है। χ^2 (काई वर्ग) वुल्फ[9] के जी-सारणी के व्यवहार से निकाला गया है और सम्भावनाएं फिशर तथा येट्स[10] के आधार पर प्राप्त की गई हैं। एनाटोमी के अनुसार मानव का तलवा 8 क्षेत्रों में बाँटा गया है जहाँ विभिन्न

प्रकार के त्वचीय प्रतिरूप पाए जाते हैं। इन्हें टिबियों-फिबुलर अनुक्रम के आधार पर—हेलुकल क्षेत्र, इंटरडिजिटल I, II, III, एवं IV, हाइपोथिनर डिस्टल, हाइपोथिनर प्रोक्सिमल, केलकर एवं थिनर प्रोक्सिमल कहा जाता है।

परिणाम तथा विवेचना

सारणी 1 में मुख्य रेखाओं DCBAE के अन्त होने की स्थिति को दर्शाया गया है। मुख्य रेखा D का अन्त क्षेत्र 1′ में अधिक (72 प्रतिशत) है लेकिन दाँये पैर के व्यक्ति (78 प्रतिशत) ज्यादा पाये गये हैं। इसी रेखा के अन्त क्षेत्र 1″ में बाँये पैर के व्यक्ति ज्यादा पाये गये हैं।

मुख्य रेखा C का अन्त क्षेत्र 1′ में अधिक (45 प्रतिशत) है तथा दोनों ही पैरों में समान स्थिति पायी गयी है। क्षेत्र 9 तथा क्षेत्र 1″ क्रमशः दूसरे तथा तीसरे स्थान पर पाते हैं लेकिन इनमें बाँये पैर के व्यक्ति ज्यादा पाये गये हैं।

मुख्य रेखा B का अन्त क्षेत्र 1″ में अधिक (49.5 प्रतिशत) है तथा क्षेत्र 1′, 7 एवं 9 में क्रमशः 14 प्रतिशत, 17 प्रतिशत एवं 16 प्रतिशत घुमाव पाया गया है। क्षेत्र 1 एवं 7 में बाँये पैर के व्यक्ति अधिक हैं तो क्षेत्र 9 में दाँये पैर वाले अधिक हैं।

मुख्य रेखा A का अन्त क्षेत्र मुख्यतः 1″ (90 प्रतिशत) ही है और दोनों ही पैरों में समान स्थिति पायी गयी है। 2.5 प्रतिशत लोगों का अन्त क्षेत्र 5 पाया गया है।

मुख्य रेखा E का अन्त क्षेत्र मुख्यतः 13 (99.5 प्रतिशत) है। सिर्फ 1 केस (·5 प्रतिशत) 1″ में अन्त करता है।

सारणी 1 से यह स्पष्ट पता चलता है कि मुख्य रेखा E का अन्त एक ही क्षेत्र 13, A का अन्त दो क्षेत्रों में 1′ एवं 1′, D और C का तीन-तीन क्षेत्रों 1′, 1″ एवं 9 में तथा B का अन्त चार क्षेत्रों 1′, 1″, 7 एवं 9 में हुआ है।

इन रेखाओं की तुलना (दास शर्मा के द्वारा प्राप्त आँकड़ों के आधार पर) मुण्डा एवं उराँव के साथ करने पर पाया जाता है कि मुण्डा में मुख्य रेखाएँ DCBAE का अन्त क्षेत्र क्रमशः 1″ (58.3%), 1″ (43.6%), 1″ (46.1%), 1″ (68.1%) तथा 13 (77.9%) है और उराँव में क्रमशः 1″ (58.3%), 1″ (40%), 1″ (36.9%), 1″ (70.6%) एवं 13 (77.4%) है। बिरहोर में मुख्य रेखाएँ D एवं C का अन्त क्षेत्र 1′ है जबकि अन्य दोनों जनजातियों में अन्त क्षेत्र 1″ है। बिरहोर में मुख्य रेखाएँ A एवं E का अन्त क्षेत्र क्रमशः 1″ (90%) और 13 (99.5%) है जो अन्य दोनों जनजातियों की तुलना में सर्वाधिक है।

सारणी 2 में हेलुकल (थिनर/1), इंटरडिजिटल II, III एवं IV क्षेत्रों में पायी गयी रेखाओं की आकृति के प्रकारों को दर्शाया गया है। हेलुकल क्षेत्र में लूप डिस्टर की आकृति 95.5% पायी गयी है

सारणी 1

मुख्य रेखाओं DCBAE का अन्त क्षेत्र ($n=100$)

अन्त क्षेत्र	मुख्य रेखा D			मुख्य रेखा C			मुख्य रेखा B			मुख्य रेखा A			मुख्य रेखा E		
	R	L	T	R	L	T	R	L	T	R	L	T	R	L	T
O	4	—	4	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
1′	78	66	144	45	45	90	10	18	28	8	9	15	—	—	—
1″	12	18	30	15	25	40	48	51	99	90	90	180	—	1	1
4	5	—	5	3	—	3	—	—	—	—	—	—	—	—	—
5	—	—	—	—	—	—	—	4	4	3	2	5	—	—	—
7	6	6	12	3	3	6	15	19	34	—	—	—	—	—	—
9	—	5	5	21	31	52	22	10	32	—	—	—	—	—	—
11	—	—	—	6	3	9	3	—	3	—	—	—	—	—	—
13	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	100	99	199

सारणी 2

हेलुकल तथा इंटरडिजिटल II, III, एवं IV में त्वचीय आकृति

आकृति	हेलुकल			इंटरडिजिटल II			इंटरडिजिटल III			इंटरडिजिटल IV		
	R	L	T	R	L	T	R	L	T	R	L	T
O	—	—	—	100	100	200	42	56	98	100	100	200
A	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
W	3	3	6	—	—	—	—	—	—	—	—	—
Ld	99	93	191	—	—	—	50	52	102	—	—	—
Lt	—	3	3	—	—	—	—	—	—	—	—	—
Lf	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—

जहाँ

O=ओपेन फील्ड, A=आर्च, W=होर्ल, Ld=लूप डिस्टल, Lt=लूप टिबीयल, Lf=लूप फिबुलर

तथा दोनों ही पैरों में लगभग समान पायी गयी है और होर्ल आकृति दोनों ही पैरों में 3-3 की संख्या में है। लूप टिबियल की सिर्फ 3 संख्या बाँये पैर में पायी गयी है। सामान्य लोगों में यह लक्षण 48.5% पाया गया है (सरन[41])। मुण्डा में भी लूप डिस्टल दोनों ही पैरों में समान (74.3%) है लेकिन उराँव में दोनों पैरों में थोड़ा अन्तर है (दाँया 70.7% तथा बांया 75.4%)।

इंटरडिजिटल क्षेत्र II एवं IV में प्रोक्सिमल ट्राइरेडिया नहीं पाये गये हैं जबकि इंटरडिजिटल क्षेत्र III में लूप डिस्टल एवं ओपेन फिल्ड की संख्या लगभग बराबर पायी गयी है। मुण्डा एवं उराँव के के इंटरडिजिटल क्षेत्र II एवं IV में ओपेन फील्ड की अधिकता है लेकिन लूप डिस्टल के अलावा अन्य आकृतियाँ भी पायी गयी हैं।

सारणी 3

प्रोक्सिमल ट्राइरेडिया (p) की स्थिति

प्रोक्सिमल ट्राइरेडिया (p)					
उपस्थित			अनुपस्थित		
R	L	T	R	L	T
22	29	51	78	71	149

सारणी 3 का विश्लेषण करने पर यह प्राप्त होता है कि अधिकांश लोगों में (74.5) प्रोक्सिमल ट्राइरेडिया अनुपस्थित है। मुण्डा एवं उराँव में क्रमशः 64.7 प्रतिशत एवं 59.9 प्रतिशत पैरों में प्रोक्सिमल ट्राइरेडिया उपस्थित है। अनुपस्थित ट्राइरेडिया बिरहोर तथा उराँव में दाँये पैर में अधिक है जबकि मुण्डा में बाँये पैर पर अधिक है।

सारणी 4

डिस्टल हाइपोथिनर तथा अन्य क्षेत्रों में लूप टिबियल (Lt) की स्थिति

डिस्टल हाइपोथिनर			प्रोक्सिमल हाइपोथिनर			केलकर			प्रोक्सिमल थिनर		
R	L	T	R	L	T	R	L	T	R	L	T
12	16	28	—	—	—	—	—	—	—	—	—

सारणी 4 से यह स्पष्ट पता चलता है कि लूप टिबियल सिर्फ डिस्टल हाइपोथिनर क्षेत्र में (14%) ही पाया गया है एवं अन्य क्षेत्रों में नहीं है। यह लक्षण भी मुण्डा एवं उराँव के समान ही है, सिर्फ उराँव में एक-दो मामलों में लूप टिबियल पाया गया है।

सारणी 5

बिरहोर एवं मुण्डा और बिरहोर एवं उराँव के बीच χ^2 (काई वर्ग) का मान

मुख्य रेखा	अन्त क्षेत्र	बिरहोर एवं मुण्डा के बीच	बिरहोर एवं उराँव के बीच
D	1′	0.13	5.0*
	1″	1.0	2.04
C	1′	0.41	6.65*
	1″	3.4	3.5
	9	0.13	2.66
B	1′	1.1	5.6*
	1″	0.44	0.55
	7	2.27	0.94
	9	3.58	4.19*
A	1″	0.32	1.1
E	13	3.81	0

*महत्वपूर्ण अन्तर दर्शाता है (0.05 पर) $df=1$

सारणी 5 का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि मुख्य रेखा DCB का अन्त क्षेत्र 1 बिरहोर तथा मुण्डा के बीच किसी भी प्रकार का महत्वपूर्ण अन्तर नहीं पाया गया है जबकि बिरहोर एवं उराँव के बीच महत्वपूर्ण अन्तर पाया गया है। मुख्य रेखा B का अन्त क्षेत्र 9 में भी बिरहोर एवं उराँव के बीच महत्वपूर्ण अन्तर प्राप्त हुआ है। इस प्रकार देखते हैं कि 11 क्षेत्रों में से बिरहोर एवं उराँव के बीच 4 क्षेत्रों में महत्वपूर्ण अन्तर मिला है जबकि बिरहोर एवं मुण्डा के बीच किसी भी क्षेत्र में महत्वपूर्ण अन्तर नहीं मिला है।

सारणी 6

हेलुकल तथा इंटरडिजिटल II, III एवं IV में त्वचीय आकृति का तुलनात्मक आँकड़े (%)

आकृति	हेलुकल	II	III	IV	स्रोत
सामान्य लोग					
O	12.2%	—	—	—	सरन (11)
W	30.8%				
Ld	48.5%				
Lt	7.3%				

दिल्ली और पंजाब के लोग					
O	8.22	69.78	41.32	84.89	दत्ता (12)
W	24.96	2.55	11.16	0.15	
Ld+Ld	66.82	27.67	47.52	14.96	
मुण्डा (बिहार)					
O	4.8	77.0	67.7	84.1	दास शर्मा (7)
W	5.9	1.6	5.1	1.2	
Ld	73.0	10.3	54.4	14.3	
Lt	6.3	8.7	2.4	0.4	
उराँव (बिहार)					
O	0.0	89.8	40.7	81.1	तथैव
W	11.3	0.9	1.5	—	
Ld	74.3	3.9	55.4	18.1	
Lt	6.4	5.4	2.4	0.9	
बिरहोर (बिहार)					
O	—	100.0	49.0	100.0	वर्तमान अध्ययन
W	3.0	—	—	—	
Ld	95.5	—	51.0	—	
Lt	—	—	—	—	

निर्देश

1. वर्मा, बी॰ वी॰, **मैन इन इंडिया** 1952, **32**, 134-143.
2. मुखर्जी, डी॰ पी॰ तथा चक्रवर्ती, एम॰ आर॰, **मारफो** एन्थ्रो 1964, **55**, 32-45.
3. चक्रवर्ती, एम॰ आर॰, **बुले॰ वि॰ ट्रा॰ रि॰** ई॰, 1965, 143-167.
4. दासशर्मा, पी॰, ई॰ एन॰ **सोसा निपोन**, 1973, 81, 260-267.
5. दासशर्मा, पी॰ तथा साहु, बी॰, 1974, 11, 121-126.
6. शुक्ला, वी॰ आर॰ के॰ तथा त्यागी डी॰ ई॰, **ज॰ फि॰ एन॰ ह्यू॰ जे॰** 1975, 1, 59-65.
7. दासशर्मा, पी॰, **मैन इन इंडिया** 1979, 57, 4.
8. कर्मिस एच॰ तथा मिडले, सी॰, न्यूयार्क 1961.
9. वुल्फ, बी॰, अन्न हुमेन जेनं 1957, **21**, 397-409.
10. फिशर, आर॰ तथा येट्स, एफ॰, एग॰ मेडि॰ रि॰ न्यूयार्क, 1953.
11. सरन, आर॰ के॰, साइन्स रिपोर्टर, 1977, **14**(4), 213-217.
12. दत्ता, पी॰ के॰, सम आसपेक्ट ऑफ अप्ल॰ पी॰ एन॰ 1963, 134-139.

Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, Vol. 34, No. 3, 1991

आइपोमिय कार्निया जैक्विनां के काष्ठ का रासायनिक विश्लेषण एवं लुगदी तथा कागज निर्माण में उपयोग का अध्ययन

आर० एन० शुक्ला, एस० पी० शर्मा तथा आर० एम० श्रीवास्तव

प्रयुक्त रसायन विभाग
सम्राट अशोक टेक्नालॉजिकल इंस्टीट्यूट, विदिशा (म० प्र०)

[प्राप्त—मार्च 15, 1991]

सारांश

आइपोमिया कार्निया जैक्विन (बेशरम) के अनुपयोगी काष्ठ के रासायनिक अध्ययन के लिए काष्ठ का रासायनिक विश्लेषण किया गया एवं प्राप्त परिणाम के आधार पर काष्ठ को लुगदी एवं कागज निर्माण के लिए उचित पाया गया। काष्ठ से अविरंजक लुगदी 42-44 प्रतिशत तक प्राप्त की गई, जिसके लिए 160° ताप, 2.2 किग्रा०/घंटे दाब, 90 मिनट का समय एवं 17 प्रतिशत क्रियाशील क्षार की आवश्यकता पड़ी। अविरंजक लुगदी का सी० ई० एच० श्रेणी के द्वारा 84-85 प्रतिशत (आई० एस० ओ०) तक विरंजन किया गया, जो कि आर्थिक रूप से उचित पाया गया। विरंजक लुगदी से कम पोस्ट कलर एवं रंगविहीन कागज का निर्माण आसानी से किया गया। इस लुगदी को अन्य काष्ठ की लुगदी में मिलाकर उसकी विरंजक क्षमता, पोस्ट कलर नम्बर और सरंध्रता जैसे विशिष्ट गुणों में विकास किया जा सकता है, तथा इस झाड़ी को बिना किसी कठिनाई के अनुपजाऊ एवं वंध्या भूमियों पर उगाया जा सकता है।

Abstract

Studies on chemical analysis and paper making of Ipomia Carnea Jacq. *By* R. N. Shukala, S. P. Sharma, R. M. Shrivastava, Samrat Ashok Technological Institute, Vidisha (M. P.).

Results of analysis of Ipomea Carnea Jacq. (Beshram) show it to be useful for pulp and paper production. Unbleached pulp yield is 44-45% which is obtained by

kraft pulping, which bleached to about 84-85% ISO. Bleached pulp shows low Posts Colour number and produces non-porous paper. Pulp can be blanded with other wood pulp to improve brightness, post colour number and porosity. It can be grown without much efforts on waste land.

वन सम्पदा एवं कृषि के निष्पन्न पदार्थ की कमी से कच्चे माल की समुचित मात्रा में पूर्ति न होने के कारण कागज-उद्योग गहन संकट के दौर से गुजर रहा है। अतः हमारे लिए यह नितांत आवश्यक है कि हम इसके स्थान पर अन्य नये तंतुमय कच्चे माल की खोज करें, जो सहज ही उपलब्ध हो एवं उससे बनने वाले कागज की गुणवत्ता में कमी न आये।

इस संदर्भ में बेशरम (आइपोमिया कार्निया जैक्विन) जो कनवेल्व्यूलेसी कुल का सदस्य है, महत्व-पूर्ण झाड़ी है। इसका मूल स्थान दक्षिण अमेरिका है एवं आमतौर पर उष्ण कटिबन्धी, कटिबन्धीय एवं उष्मीय तीनों परिस्थिति में उगने के कारण भारतवर्ष के लगभग सभी हिस्सों में पायी जाने वाली झाड़ी है। यह भारत में एक सजावटी पादप के रूप में प्रविष्ट की गई थी। इसकी पत्तियाँ अण्डाभ, हृदयाकार, अछिन्नकोर, लम्बाग्र, फूल बड़े, घंटाकार, पीत गुलाबी चटक मृदु नील लोहित अथवा हल्के जामुनी ढीले द्विभुजी कक्षीय और अन्तस्थ पुष्पगुच्छीय ससीमाक्षों पर सम्पुटिकाएँ 1.25 सेमी० लम्बी, चिकनी और बीज रेशमी होते हैं। आइपोमिया कार्निया की पत्तियों का उपयोग दक्षिण में हरी खाद के रूप में होता है, तथा छँटाई के बाद यह अच्छा पनप आता है। वर्षासिंचित परिस्थितियों में लगभग 1.6 किमी० लम्बी किनारे की फसल में 6 कटाइयों से एक वर्ष में 340000 किग्रा० हरा पदार्थ प्राप्त हुआ। सिंचाई की परिस्थितियों में उपलब्धि इससे लगभग दुगुनी हुई[1]। यह पौधा पशुओं एवं जन्तुओं के लिए विषैला है। इसकी पत्तियों में एक पॉलीसैकेराइड आइपोमस, एक एन्थ्रीसीन ग्लुकोसाइड, एक गोंद जेलीपिन और सैपोनिन होता है। इसमें दो विषैले पदार्थ उपस्थित रहते हैं, जो शिरा के रक्त को विच्छेदन कर देते हैं एवं केन्द्रीय तन्त्रिका प्रणाली को जिसमें श्वसन और हृदय नियन्त्रक केन्द्र सम्मिलित है हानि पहुँचाता है। इसके जलने पर इसका धुआँ हल्के विष विरेचक की भाँति कार्य करता है। [2 अ, ब]

आइपोमिया कार्निया अब तक नितांत अनुपयोगी झाड़ी रही है, क्योंकि शीघ्र दिशाहीन वृद्धि के कारण बाड़ के रूप में तथा इसके काष्ठ का इंधन के रूप में उपयोग भी लाभदायक सिद्ध नहीं हो सका। इससे निकलने वाले धुएँ से वायु प्रदूषण द्वारा पर्यावरण प्रदूषित होता है। अतः इसका उपयोग लुगदी एवं कागज जैसे बहुमूल्य पदार्थ के बनाने में किया गया। इससे इसमें उपस्थित विष भी उदासीन हो जाता है, जो कि पर्यावरण को दूषित नहीं करता।

प्रयोगात्मक

आइपोमिया कार्निया के काष्ठ को मध्य प्रदेश के विदिशा, झाबुआ, उड़ीसा के कोरापुट, गंजाम उत्तर प्रदेश के ललितपुर, नैनीताल एवं पंजाब के होशियारपुर, रोपड़ जिलों से एकत्र किया गया। उसके सूखे काष्ठ के छोटे-छोटे टुकड़े करके उसका बुरादा बनाया गया। इस बुरादे का भारतीय मानक 40 तथा 60 नम्बर की छन्नी से छानकर प्रादर्श बनाया। इसी प्रादर्श का उपयोग रासायनिक विश्लेषण के लिए

किया गया। विश्लेषण अन्तर्राष्ट्रीय लुगदी एवं कागज तकनीकी संगठन के मानक[3], कैनेडियन अन्तर्राष्ट्रीय मानक[4] एवं भारतीय मानक[5] की विधियों द्वारा किया गया। विश्लेषण से प्राप्त परिणाम सारणी 1 में दर्शाये गये हैं। होलोसेल्यूलोस, जो पूर्ण कार्बोहाइड्रेट का भाग है, के ही आधार पर लुगदी निर्माण किया गया।

लुगदी का निर्माण

काष्ठ के टुकड़ों का उचित आकार के अनुसार वर्गीकरण करके 17 प्रतिशत क्रियाशील क्षार (Na_2O) के साथ 165° C ताप, 2.2 किग्रा० प्रति घण्टे दाब पर 90 मिनट तक डाइजेस्टर में पकाया गया। पकाने के बाद अविरंजक लुगदी की मात्रा 42-44 प्रतिशत प्राप्त की गयी है। इसकी प्राप्ति सारणी 2 के अनुसार परिस्थिति का निरीक्षण करके की गयी। इस अविरंजक लुगदी से प्राप्त तन्तु के गुणों का अध्ययन किया गया जिसके परिणाम सारणी 3 में दर्शाये गये हैं।

अविरंजक लुगदी का विरंजन विरंजक पदार्थ द्वारा निम्नलिखित चरणों में किया गया :

(अ) **क्लोरीनीकरण** : इस प्रक्रिया में अविरंजक लुगदी के 6.2 प्रतिशत क्लोरीन युक्त जल के साथ 30 मिनट तक साधारण ताप पर क्रिया की गयी। क्रिया के फलस्वरूप लुगदी में उपस्थित लिग्निन क्लोरोलिग्निन में परिवर्तित हो गया, जो कि क्षार के साथ विलयशील होकर निकल जाता है।

(ब) **क्षारीयकरण** : क्लोरीनेट लुगदी को 1.1 प्रतिशत कास्टिक सोडे के साथ 40-45 °C तक क्रिया करके क्लोरोलिग्निन सोडियोलिग्नेट में परिवर्तित होकर जल में विलेय हो गया। अब लुगदी में केवल कुछ रंगीन अवशेष शेष रह जाते हैं। इनको अगले पद में विरंजन कर लिया जाता है।

(स) **हाइपोक्लोराइटीकरण** : क्षारीय लुगदी की 0.4 से 1.8 प्रतिशत कैल्सियम हाइपोक्लोराइट के साथ 40°C पर 2 से 3 घंटे तक क्रिया की गई। इससे बचे हुए रंगीन पदार्थ का पूर्ण रूप से विरंजन होने पर 82-84 प्रतिशत तक चमक वाली लुगदी प्राप्त हुई। इसकी परिस्थिति सारणी 4ब के अनुसार निरीक्षण करके प्राप्त की गयी, जिससे 35 प्रतिशत से 38 प्रतिशत तक लुगदी मिली। लुगदी के गुणों के परिणाम सारणी 4अ तथा ब में दिये गये हैं।

कागज का निर्माण

अविरंजक एवं विरंजक लुगदी के द्वारा पृथक-पृथक कागज का निर्माण प्रयोगशाला विधि से किया गया। इसी के साथ शांरिया रोब्यूस्टा की लुगदी को आइपोमिया की लुगदी में मिलाकर पृथक कागज निर्माण किया गया[6] जिसमें 40° SR तक तन्तु पृथक करने के बाद ब्रिटिश हैन्डशीट मेकर के द्वारा 60 ग्राम वर्ग सेमी० की शीट बनाई गई। इस शीट को वायु दाब यन्त्र द्वारा दबाकर कमरे के ताप में सुखाया गया। सूखी शीट को कंडीशनिंग करके आई० एस० आई०[7] टी० ए० पी० आई०[3] विधि के अनुसार परीक्षण किया गया जिसके परिणाम सारणी 5 एवं चित्र 1 तथा 2 में दिये गये हैं।

परिणाम तथा विवेचना

परिसीमित रासायनिक विश्लेषण के परिणामों (सारणी 1) के आधार पर पाया गया कि आइपोमिया कार्निया में लिग्निन की मात्रा अन्य काष्ठ जैसे यूकेलिप्टस[10] से कम है । साथ ही होलोसेल्यूलोस एवं अकार्बनिक पदार्थ की मात्रा अन्य काष्ठ जैसे बाँस[8] से अधिक है । अतः इसका काष्ठ लुगदी बनाने में अधिक हितकारी है । लुगदी का विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि शोरिया रोब्यूस्टा[9] द्वारा प्राप्त लुगदी तथा आइपोमिया कार्निया की लुगदी के गुणधर्म लगभग समान हैं । विशेष रूप से तन्तु का वर्गीकरण एवं तन्तु की आंतरिक रचना का अध्ययन सारणी 3 के आधार पर अन्य तन्तुओं से करने पर पाया गया कि आइपोमिया कार्निया के तन्तु की दीवाल में अंश भी कम होते हैं । सामान्यतः वे तन्तु जो पतली भित्ति वाले होते हैं, उत्कृष्ट कोटि का कागज निर्माण करने में सहायक होते हैं । आइपोमिया कार्निया के तन्तु में पतली भित्ति के अन्दर खोखला वाला भाग फीते का आकार ग्रहण कर लेता है, फलस्वरूप लुगदी बनाते समय लिग्निन का पृथक्करण शीघ्रतापूर्वक होता है । चूँकि सतह चौड़ी होती है, अतः आंतरिक तन्तु बन्ध सुगमतापूर्वक हो जाता है, जो कि कागज निर्माण के समय कागज को यांत्रिक मजबूती तो प्रदान करता ही है, साथ ही उच्च गुणवत्ता भी बनाये रखता है ।

सारणी 2 के आधार पर 17 प्रतिशत क्रियाशील क्षार द्वारा अविरंजक लुगदी की मात्रा 42-44 प्रतिशत के साथ 25±1 कापा नम्बर एवं 8 cps श्यानता वाली लुगदी प्राप्त की गयी, जो कि अन्य काष्ठ से उच्च कोटि की है । साथ ही अविरंजक कागज के निर्माण के लिए उपयुक्त है । सारणी 4अ एवं ब अविरंजक लुगदी का विरंजन 6 प्रतिशत क्लोरीन एवं 1.5 प्रतिशत कास्टिक से करने पर 83-85 प्रतिशत ISO चमक वाली लुगदी के साथ पोस्ट कलर नम्बर- श्रंकेज व 5 cps श्यानता प्राप्त होना अति उत्तम सिद्ध हुआ, जिससे इसका उपयोग रेयान बनाने वाली लुगदी के रूप में भी किया जा सकता है। चित्र 1 एवं 2 में बताये गये (विरंजक लुगदी 85 प्रतिशत ISO चमक वाली) द्वारा कागज के शक्ति गुण के आधार पर पाया गया कि ब्रेकिंग लैन्थ तथा बर्स्ट इंडेक्स की वृद्धि 37-41 प्रतिशत तक एवं टीयर इंडैक्स की कमी 13 प्रतिशत तक 24° SR से 55° SR वाले लुगदी से हुई । चित्र क्रमांक 2 के द्वारा देखा जा सकता है कि अविरंजक एवं विरंजक लुगदी के गुण 30-35° SR तक समान होते हैं एवं इसके बाद गुणों का बढ़ना एवं घटना शुरू होता है । सारणी 5 के आधार पर कह सकते हैं कि आइपोमिया कार्निया की लुगदी को शोरिया रोब्यूस्टा एवं बांस की लुगदी में मिलाने पर लुगदी की चमक, पोस्ट कलर नम्बर, एवं रंध्रता जैसे गुणों को उन्नत करता है ।

उपर्युक्त विवरण एवं परिणाम के आधार पर हम कह सकते हैं कि आइपोमिया कार्निया का उपयोग करते हुए औद्योगिक स्तर पर कागज का निर्माण किया जाना सम्भव है । आइपोमिया कार्निया से बनाया गया कागज अन्य कच्चे तन्तुमय माल द्वारा बनाये गये कागज के समकक्ष होते हुए कई गुणों में उत्तम है जबकि लागत में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है । आइपोमिया कार्निया की लागत अन्य काष्ठ से बहुत कम पड़ती है । इस प्रकार इसका उपयोग रचनात्मक कार्य में होना तथा प्रायः अनुपयुक्त समझी जाने वाली झाड़ी से एक महत्वपूर्ण उत्पाद बनाया जाना काफी हद तक कागज उद्योग पर होने वाले व्यय पर नियन्त्रण करने में सहायक सिद्ध होगा । इसकी वृद्धि क्षमता में अधिक होने के कारण
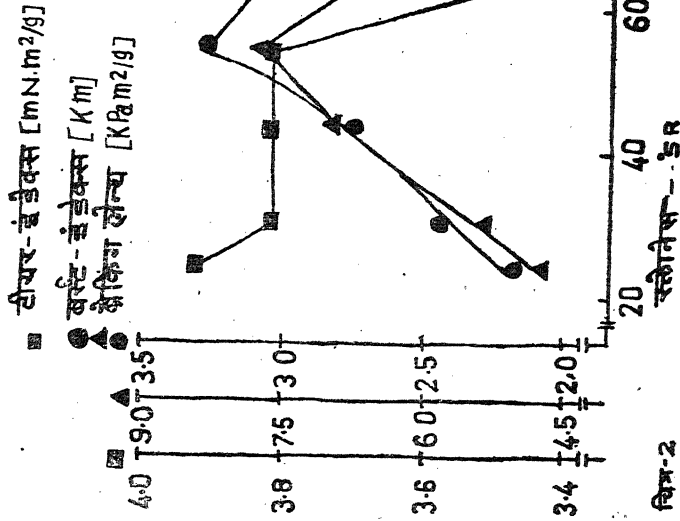
चित्र 1 : अविरंजक लुगदी द्वारा निर्मित कागज के शक्तिगुण परीक्षण
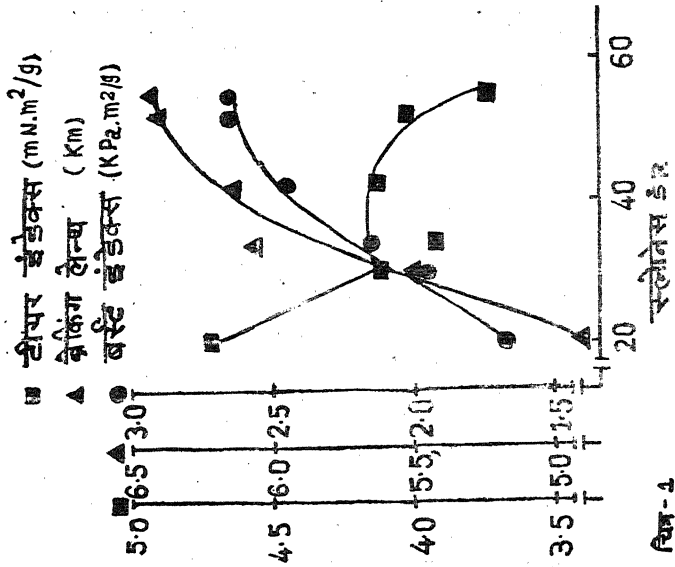
चित्र 2 : विरंजक लुगदी द्वारा निर्मित कागज के शक्ति गुण परीक्षण

इससे कागज निर्माण कागज उद्योग में गहराते हुए संकट को दूर करने में सहायक होगा। चूँकि आइपो-मिया कार्निया का उत्पादन बिना किसी विशेष प्रयास व खर्च के बहुतायत में किया जा सकता है, अतः इससे कागज की माँग एवं पूर्ति में सामंजस्य स्थापित किया जा सकेगा।

सारणी 1

आइपोमिया कार्निया जैविन का अन्य काष्ठों के साथ रासायनिक विश्लेषण का तुलनात्मक विवरण (%)

क्रम सं०	विवरण	आ० कार्निया 6 माह	आ० कार्निया 1 वर्ष	इन्डोकैलेमस[8] स्टीटस (बांस)	यूकोलिप्टस[10]	शोरिया रो० (साल)
1.	अकार्बनिक पदार्थ	4.50	5.80	2.40	0.42	0.28
2.	ठंडे पानी में विलेय पदार्थ	5.81	5.14	5.60	2.31	0.82
3.	गर्म पानी में विलेय पदार्थ	12.70	12.90	10·10	3.19	4.91
4.	ईथर में विलेय पदार्थ	3.04	3.14	3.10	1.10	2.01
5.	एल्कोहल बेंजीन में विलेय पदार्थ	6.84	7.24	3.72	2.71	4.16
6.	1% NaOH में विलेय पदार्थ	34.08	35.14	36.47	20.20	18.42
7.	पैन्टोजन पदार्थ	16.40	16.98	18.10	22.80	12.96
8.	लिग्निन पदार्थ	17.80	17.89	26.80	27.50	24.12
9.	होलोसेल्यूलोस	64.80	65.14	62.20	70.00	78.61
10.	हेमीसेल्यूलोस	22.04	22.89	22.00	32.80	30.16

परिणाम सूखी डस्ट पर प्रतिशत मात्रा पर आधारित है।

सारणी 2

लुगदी निर्माण की परिस्थिति का निरीक्षण एवं परिणाम

क्रम	विवरण		1	2*	3	4	5	6	7	8
1.	नमी	%	10.00	10.00	10.00	10.00	10.00	10.00	10.10	10.00
2.	ताप		155	160	165	170	155	160	165	170
3.	समय	घंटे	1.5	1.5	1.5	1.5	2.0	2.0	2.0	2.0
4.	रसायन	%	18	17	16	16	18	17	16	16
5.	अविरंजक लुगदी की मात्रा	%	48.08	43.60	44.40	42.48	42.40	42.48	43.84	42.48
6.	कापा नम्बर	नं०	24.00	23.80	25.40	24.80	23.46	23·84	24.61	23.48
7.	क्रियाशील क्षार ग्राम ली० ब्लैक लिकर में		4.21	4.04	3·14	3.04	4.14	4.21	3.86	3.94
8.	अवशेष	%	0.94	1.01	1.42	1.81	1.01	1.12	1.42	1.10
9.	श्यानता सी०ई०डी०	cps	6.9	6.4	6.1	6.4	6.8	6.1	6.2	6.1

* कुक नम्बर 2 लुगदी निर्माण के लिए उचित पाया गया।

सारणी 3 (अ)

आइपोमिया कार्निया के अविरंजक लुगदी के तन्तु का वर्गीकरण

क्रम सं०	छन्नी से प्राप्ति	प्रतिशत मात्रा
1.	+16 मेस	4.7
2.	–16+30 मेस	10.7
3.	–30+50 मेस	30.2
4.	–50+50 मेस	35.8
5.	–200 मेस	20.1

सारणी 3 (ब)

आइपोमिया कार्निया के तन्तु की आकृति एवं अन्य काष्ठ के तन्तु से तुलना

क्रम सं०	काष्ठ का नाम	तन्तु की लम्बाई (1) मिमी०	तन्तु की चौड़ाई (d) माइक्रोन	सैल की दीवाल की मोटाई t माइक्रोन	दीवाल के अंश [2±/W× 100]%
1.	आइपोमिया कार्निया	0.64	33.74	1.56	9
2.	इंडोकैलेमस स्टीटस (बांस)	1.75	15.5	5.00	65
3.	यूकोलिप्टस	0.97	12.88	4.18	66
4.	शोरिया रोब्यूस्टा (साल)	0.89	12.16	4.47	65
5.	पाईन	2.25	41.5	6.00	29

सारणी 4 (अ)

आइपोमिया कार्निया का विरंजनीकरण की परिस्थिति का निरीक्षण

क्रम सं०	विवरण		1	2	3	4	5
1.	क्लोरीन की मात्रा	%	4.00	5.50	5.75	6.00	6.25
2.	अक्रियाशील बची हुई क्लोरीन की मात्रा	%	0.58	1.39	2.28	2.66	4.12
3.	पी० एच०		2.4	2.3	2.2	2.1	2.0
4.	NaOH की मात्रा	%	1.0	1.3	1.5	1.6	1.7
5.	पी० एच०		9.5	9.8	9.9	10.0	10.1
6.	कापा नम्बर	नं०	7.41	7.12	6.8	6.5	6.2

सारणी 4 (ब)

हाइपोक्लोराइट विरंजनीकरण

क्रम सं०	क्लोरीन सूखी लुगदी पर %	अक्रियाशील बची क्लोरीन %	चमक %(ISO)	श्यानता [CED] cps	पी० सी० नम्बर	लुगदी पर कुल श्रंकेज %
1.	0.5	2.4	80.9	12.4	3.0	10.4
2.	1.0	5.2	81.8	12.0	4.8	10.8
3.	1.5	10.5	83.4	9.1	1.4	12.4
4.	2.0	16.8	83.9	8.8	5.5	14.8
5.	3.0	25.5	84.8	6.8	6.8	17.8

सारणी 5

आइपोमिया कार्निया एवं शोरिया रोब्यूस्टा की लुगदी के मिलाने पर शक्ति गुण

मिलान विवरण आ०का० %	शो० रो० %	चमक % ISO	पी० सी० नम्बर	बर्स्ट इंडैक्स कि० पो०/मी²/ग्राम	ब्रेकिंग लैंथ कि० मी०	टियर इंडेक्स मी० न्यूटन मी²/ग्राम	सरंध्रता मिली०/मी०
100	00	84.29	7.28	3.31	7.44	3.84	0
90	10	84.24	7.25	3.42	7.48	4.92	0
80	20	83.86	7.69	3.20	7.50	4.94	5
70	30	83.79	7.70	3.21	7·52	4.96	10
60	40	82.76	7.84	3.14	7.52	5.19	15
50	50	83.54	7.94	3.24	7.54	4.94	18
40	60	82.80	8.04	3.30	7.54	5.18	18
30	70	82.70	8.14	3.34	7.50	5.40	30
20	80	82.55	8.31	3.33	7.48	5.54	40
10	90	82.40	8.43	3.45	7.64	5.70	60
0	100	81.00	8.61	3.55	7.75	6.37	80

कृतज्ञता-ज्ञापन

लेखकगण इस शोध प्रपत्र के कार्य के लिए लुगदी एवं कागज अनुसन्धान केन्द्र (पपरी) जे० के० पुर उड़ीसा व सैन्चुरी लुगदी एवं कागज लि० नैनीताल उत्तर प्रदेश के प्रबन्धक मंडल एवं प्रो० एच० एन० सिलाकारी, प्राचार्य एस० ए० टी० आई०, विदिशा के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, जिनकी प्रेरणा तथा मार्गदर्शन से अध्ययन सम्भव हो पाया है।

निर्देश

1. पूर्निया एवं अन्य इंडियन-फिम-एन० एस० 1954-55 4(12) 14
2. (अ) कटयाल, इंडियन-फिम-एन० एस०-1955-56, 5, (12), 39
   (ब) कैमिकल एब्सट्रैक्ट-1948, 42, 7837

3. टेकनिकल एसोसियेशन ऑफ पल्प एण्ड पेपर इंडस्ट्री-न्यूयार्क ओफीसियल स्टेण्डर्ड्स, टी-207, टी-221, टी-204, टी-222, टी-223, टी-5, टी-212, टी-22, टी-23-1980.

4. कैनेडियन पल्प एण्ड पेपर एसोसियेशन स्टैण्डर्ड विधि 1984.

5. इंडियन स्टैण्डर्ड ISI 6213, III 1978.

6. शुक्ला आर० एन०, शर्मा, एस० पी०, पी० एस० एस० पेपर ट्रेड जे० 1290 4, 28.

7. इंडियन स्टैण्डर्ड, ISI 6213 VIII 1973.

8. सराफ, वी० पी०, श्रीवास्तव, आर० एम०, देव, यू० के०, बियानी, वी० पी० एवं अन्य IPPTA (4), 31, 1980.

9. शुक्ला, आर० एन०, श्रीवास्तव, आर० एम०, ओरियंटल जे० कैम० 5, 3, 989, 258.

10. राव, एन० एस०, चन्द्रन, के० एम० एवं भार्गव, आर० एल० IPPTA (7), 8, 1970.

11. शुक्ला, आर० एन०, शर्मा, एस० पी०, श्रीवास्तव, आर० एम०, विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका, 1990, (4), 33-255.

12. रिडोमन्स, एस० ए०, पल्पिग प्रोसेस, प्रथम संस्करण, न्यूयार्क, 1967 पृष्ठ 1154.

Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, Vol. 34, No. 3, 1991

फूरियर प्रसार द्वारा सन्निकटन

वन्दना गुप्ता, अर्चना ब्योहर तथा वीरेन्द्र के० गुप्ता

स्कूल आफ स्टडीज इन मैथेमैटिक्स, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

[प्राप्त—अक्टूबर 10, 1990]

सारांश

किसी फलन की सन्निकटन कोटि को इसकी फूरियर श्रेणी के चेजारो माध्य द्वारा सिद्दीकी [3] के एक पूर्ववर्ती परिणाम को संशोधित किया गया है।

Abstract

Approximation by Fourier expansion. *By* Vandana Gupta, Archana Beohar and Virendra K. Gupta, School of Studies in Mathematics, Vikram University, Ujjain.

In the present paper we improve an earlier result of Siddiqi [3] on the degree of approximation to a function by Cesaro means of its Fourier series.

2π आवर्त वाले तथा $[-\pi, \pi]$ में समाकलनीय आवर्ती फलन $f(x)$ से सम्बद्ध फूरियर श्रेणी को (1.1) द्वारा परिभाषित किया जाता है

$$f(x) \sim \tfrac{1}{2}a_0 + \sum_{n=0}^{\infty} (a_n \cos nx + b_n \sin nx) \tag{1.1}$$

जहाँ a_n तथा b_n फूरियर गुणांक हैं।

अनन्त श्रेणी a_n (या अनुक्रम $\{S_n\}$) का चेजारो माध्य जो कि $\sigma^{\alpha}_n (n=0, 1, 2 \ldots$ के लिए) द्वारा अंकित किया जाता है तथा

$$\sigma_n^{\alpha} = \frac{S_n^{\alpha}}{E_n^{\alpha}}, \ \alpha > -1$$ द्वारा परिभाषित होता है

जहाँ E_n^{α} तथा S_n^{α} को

$$\sum_{n=0}^{\infty} S_n^{\alpha} x^n = (1-x)^{-\alpha} \sum_{n=0}^{\infty} S_n$$

$$= (1-x) \sum_{n=0}^{\infty} a_n$$

एवं

$$E_n^{\alpha} = \binom{n+\alpha}{n} \frac{\Gamma(n+\alpha+1)}{\Gamma(n+1)\,\Gamma(\alpha+1)}$$

द्वारा दिया जाता है यदि

$$\lim_{n\to\infty} \sigma_n{}^{\alpha} = S$$

जहाँ S सान्त संख्या है। तब हम कह सकते हैं कि श्रेणी (1.1) योगफल S में योगशील है। हम लिखेंगे

$$\phi(t) = f(x+t) + f(x-t) - 2f(x),$$

तथा

$$K_n^{\alpha}(t) = \frac{1}{E_n^{\alpha}} \sum_{v=0}^{n} E_{n-v}^{\alpha-1} D_v(t)$$

फ्लेट[1] ने एक फलन से सन्निकटन की कोटि से सम्बद्ध अनेक प्रमेयों को इसकी फूरियर श्रेणी के चेजारो माध्य द्वारा सिद्ध किया है।

हम आगे निम्नलिखित प्रमेय का उल्लेख करेंगे।

प्रमेय A : माना कि

$$0 < \alpha < 1,\ 0 < \delta \leqslant \pi$$

यदि x ऐसा विन्दु है कि

$$\int_0^t |d\phi(u)| < at^{\alpha},\ \text{जहाँ}\ 0 \leqslant t \leqslant \delta$$

तब

$$\sigma_n{}^{\alpha}(x) - f(x) = O(n^{-\alpha})$$

बाद में सिद्दीकी ने[3] उपर्युक्त प्रमेय को निम्नलिखित रूप में सार्वीकृत किया है :

प्रमेय B : माना कि $0 < K < 1$ तथा $0 < \delta \leqslant \pi$, यदि x ऐसा विन्दु है कि

$$\int_0^t |d\phi(u)| \leqslant A\psi(t),\ \text{जहाँ}\ 0 \leqslant t \leqslant \delta \tag{1.2}$$

तब

$$\sigma_n^k \quad (x)-fx)=O(\psi(1/n))+O(n^{-k})$$

जहाँ $\psi(x)$ ऐसा धनात्मक वर्धमान फलन है कि

$$\int_{1/n}^{\delta} \frac{\psi(t)}{t^2}\, dt=O(n\psi(1/n)), \quad n\to\infty \tag{1.3}$$

प्रस्तुत प्रपत्र का उद्देश्य सिद्दीकी के प्रमेय[3] के प्रतिबन्धों को संशोधित करना है। हम इस परिणाम को सिद्दीकी की अपेक्षा अधिक दुर्बल प्रतिबन्ध में सिद्ध करेंगे। हमने देखा है कि

$$\int_0^t d\phi(u)=\Phi(t)$$

जिससे कि

$$\int_0^t d\phi(u)\leqslant \int_0^t |d\phi(u)|$$

$$\leqslant A\, \psi\,(t) \text{ (1.2) से}$$

इस प्रकार

$$|\Phi(t)|\leqslant A\{\psi(t)\}$$

अतएव

$$\Phi(t)=\int_0^t |\phi(u)|du$$

$$\leqslant A \int_0^t \psi\,(u)du$$

$$\leqslant A\,\{t\psi(t)\} \tag{1.4}$$

इस तरह हमने सिद्ध किया कि (1.2) का अर्थ है (1.4)। प्रस्तुत प्रपत्र का उद्देश्य प्रमेय (B) को (1.2) के बजाय प्रतिबन्ध (1.4) के अन्तर्गत सिद्ध करना है।

निम्नलिखित को सिद्ध करने के लिए हम प्रतिबन्ध (1.2) को एक दुर्बल प्रतिबन्ध (1.4) से प्रतिस्थापित करते हैं—

प्रमेय : माना कि $0<\alpha<1$ तथा $0<\delta\leqslant\pi$। यदि x ऐसा बिन्दु हो कि

$$\int_0^t |\phi(u)|du=O(t\psi(t))$$

तो

$$\sigma^{\alpha}_n\,(x)-f(x)=O(\psi(1/n))+O(n^{-\alpha})$$

जहाँ $\psi(t)$ धनात्मक वर्धमान फलन है। जिससे कि

$$\int_{1/n}^{\delta} \frac{\psi(t)}{t^2}\, dt = O(n(\psi(1/n)), \quad n \to \infty \tag{1.5}$$

हमारे प्रमेय की उपपत्ति निम्नलिखित प्रमेयिकाओं पर निर्भर करती है—

प्रमेयिका 1 : (हार्डी[2]) हमें ज्ञात है कि

$$K_n^{\alpha}(t) = \begin{cases} \leqslant A_n & 0 \leqslant t \leqslant \pi \\ = R(t) + S(t) & 1/n \leqslant t \leqslant n \end{cases}$$

जहाँ

$$R(t) = \frac{\sin\{(n+\alpha/2+\frac{1}{2})t - a\pi/2\}}{A^{\alpha}_n (2 \sin t/2)^{\alpha+1}}$$

तथा $|S(t) \leqslant A(\alpha) n^{-1} t^{-2}$ एवं A अचर है।

प्रमेयिका 2 : (फ्लेट[1]) यदि $\phi(t) \epsilon L,\ 0 < \alpha < 1,\ 0 < \delta \leqslant \pi$ तो

$$\int_{\delta}^{'t} \phi(u)\, K_n^{\alpha}(u) du = O(n^{-\alpha})$$

$$= O\left(\frac{1}{\pi} \int_{1/n}^{\delta} |\phi(u)| n^{-1} u^{-2}\, du\right) \text{ प्रमेयिका 1 से}$$

$$= O\left(n^{-1} \int_{1/n}^{\delta} \frac{|\phi(u)|}{u^2}\, du\right)$$

खण्डश: समाकलन करने पर

$$J_2 = O\left(n^{-1}\left\{\left[\frac{1}{u^2}\, \Phi(u)\right]_{1/n}^{\delta} + \int_{1/n}^{\delta} \frac{2}{u^3} \Phi(u) du\right\}\right)$$

जहाँ

$$\Phi(u) = \int_0^t \phi(u) du$$

$$= O\left(n^{-1}\left[\left\{\frac{1}{u^2}\, u\, \psi(u)\right\}_{1/n}^{\delta} + \int_{1/n}^{\delta} \frac{2}{u^3}\, u\psi(u) du\right]\right) \text{ (1.4) से}$$

$$= O\left(n^{-1}\left[\{O(1) + O(n\psi(1/n))\} + \int_{1/n}^{\delta} \frac{\psi(u)}{u^2}\, du\right)\right]$$

$$= O(O(\psi(1/n)) + O(\psi(1/n))) \text{ (1.5) से}$$

$$= O(\psi(1/n)) \tag{2.2}$$

अब

$$J_1=\frac{1}{\pi}\int_{1/n}^{\delta}|\phi(u)|\,R(u)du$$

$$=O\left(\frac{1}{\pi}\int_{1/n}^{\delta}|\phi(u)|\,n^{-\alpha}\,u^{-\alpha-1}du\right)$$

$$=O\left(n^{-\alpha}\int_{1/n}^{\delta}\frac{|\phi(u)|}{u^{\alpha+1}}du\right)$$

$$=O\left(n^{-\alpha}\left[\left\{\frac{1}{u^{\alpha+1}}\Phi(u)\right\}_{1/n}^{\delta}+\int_{1/n}^{\delta}\frac{\alpha+1}{u^{\alpha+2}}\Phi(u)du\right]\right)$$

2. प्रमेय की उपपत्ति

हमें प्राप्त हैं—

$$\sigma_n^{\alpha}(x)-f(x)=\frac{1}{\pi}\int_0^{\pi}\phi(u)\;K_n^{\alpha}(u)du$$

$$=\frac{1}{\pi}\left[\int_0^{1/n}+\int_{1/n}^{\delta}+\int_{\delta}^{\pi}\right]\phi(u)K_n^{\alpha}(u)du$$

$$=I_1+I_2+I_3\,,\qquad \text{माना}$$

सर्वप्रथम हम I_1 पर विचार करेंगे।

$$I_1=\frac{1}{\pi}\int_0^{1/n}|\phi(u)|K_n^{\alpha}(u)du$$

$$=O\left(n\int_0^{1/n}|\phi(u)|du,\ \text{प्रमेयिका 1 से}\right.$$

$$=O\left(n\frac{1}{n}\;\psi\left(\frac{1}{n}\right)\right),\ \text{संकल्पना से}$$

$$=O(\psi(1/n)) \tag{2.1}$$

इसके बाद हमें प्राप्त है—

$$I_2=\frac{1}{\pi}\int_{1/n}^{\delta}|\phi(u)|\;K_n^{\alpha}(u)du$$

$$=\frac{1}{\pi}\int_{1/n}^{\delta}|\phi(u)|\,[R(u)+S(u)]du$$

$$=J_1+J_2\,,\ \text{माना}$$

अब

$$J_2=\frac{1}{\pi}\int_{1/n}^{\delta}|\phi(u)|\,S(u)du$$

$$=O\left(n^{-\alpha}\left[\{O(1)+n^{\alpha+1}O(1/n\psi(1/n)\}+\int_{1/n}^{\delta}\frac{\alpha+1}{u^{\alpha+2}}u\phi(u)du\right]\right)$$

$$=O\left((n^{-\alpha}\left[\{n^{\alpha}O(\psi(1/n)\}+\int_{1/n}^{\delta}\frac{\alpha+1}{u^{+1}}\psi(u)du\right]\right)$$

$$=O\,(O(\psi(1/n))+n^{-\alpha}(n^{\alpha}\,O(\psi(1/n)))$$

$$=O\,(\psi(1/n))\quad+O(\psi(1/n))$$

$$=O\,(\psi(1/n)) \tag{2.3}$$

(2.2) तथा (2.3) को मिलाने पर

$$I_2=O(\psi(1/n)) \tag{2.4}$$

अन्त में प्रमेयिका 2 से हमें प्राप्त होगा

$$I_3=\frac{1}{\pi}\int_{\delta}^{\pi}[\phi(u)|\,K_n^{\alpha}(u)du$$

$$=O(n^{-\alpha}) \tag{2.5}$$

(2.1), (2.4) तथा (2.5) परिणामों को मिलाने पर

$$\sigma_n^{\alpha}(x)-f(x)=O(\psi(1/n))+O(n^{-\alpha})$$

इस तरह प्रमेय की उपपत्ति पूरी हुई।

कृतज्ञता-ज्ञापन

लेखकत्रय डा० बी० के० व्योहर तथा डा० ए० पाठक के आभारी हैं जिन्होंने अपने बहुमूल्य सुझाव दिये।

निर्देश

1. फ्लेट, टी० एम०, Quar. Jour. of Math. 1956, 87-95.
2. हार्डी, जी० एच०, Divergent Series, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1956.
3. सिद्दीकी, ए० एच०, Ind. Jour. of Pure and Appl. Maths, 1971, 2, 367-373.

Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, Vol. 34, No. 3, 1991

द्वि-दूरीक समष्टि में स्थिर बिन्दु प्रमेय

एस० खान तथा पी० एल० शर्मा
गणित विभाग, डा० हरी सिंह गौड़ विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)

[प्राप्त—जनवरी 14, 1990]

सारांश

प्रस्तुत प्रपत्र का उद्देश्य माया तथा इसेकी के प्रमेयों को सार्वीकृत करने वाले स्थिर बिन्दु प्रमेय को सिद्ध करना है।

Abstract

Fixed point theorem in bimetric space. *By* S. Khan and P. L. Sharma Department of Mathematics, Dr. H. S. Gaur University, Sagar (M. P.)

The purpose of the present paper is to prove a fixed point theorem which generalizes theorems due to Maia [1] and Iseki [2].

माया[1] में निम्नलिखित प्रमेय सिद्ध की है :

प्रमेय 1 : मानाकि X एक दूरीक समष्टि है जिसके दो दूरीक d तथा ∂ ऐसे हैं कि

(i) $d(x, y) \leqslant \partial(x, y)$, समस्त x, y X में

(ii) X पूर्ण है, d के प्रति

(iii) $T : X \rightarrow X$ संतत प्रतिचित्रण है 'd' के प्रति जो तुष्टि करता है

$$\partial(Tx, Ty) \leqslant K\partial(x, y)$$

X में समस्त x, y जहाँ $0 \leqslant k < 1$, तो X में T का एक अद्वितीय स्थिर बिन्दु पाया जाता है।

बाद में इसेकी[4] ने मायां के परिणाम[1] का सार्वीकरण करते हुए निम्नलिखित प्रमेय की स्थापना की।

प्रमेय 2 : मानाकि X एक दूरीक समष्टि है जिसके दो दूरीक d तथा ∂ ऐसे हैं कि

(i) $d(x, y) \leqslant \partial(x, y)$, समस्त x, y के लिये X में।

(ii) X पूर्ण है d के प्रति

(iii) दो प्रतिचित्रण $f, g : X \rightarrow X$ d के प्रति संतत हैं तथा

$$\partial(f(x), g(y)) \leqslant a_1\, \partial(x,y)+a_2\{\partial(x, f(x)+\partial(y, g(y))\}$$
$$+a_3\{\partial(x, g(y))+\partial(y, f(x))\}$$

X में प्रत्येक x, y के लिये जहाँ a_1, a_2, a_3 अनृण हैं तथा

$$a_1+2a_2+2a_3<1.$$

तो f तथा g का एक अद्वितीय समान स्थिर बिन्दु होता है।

अब हम निम्नलिखित प्रमेय सिद्ध करेंगे—

प्रमेय 3 : माना कि X एक दूरीक समष्टि है जिसमें दो दूरीक d तथा δ ऐसे हैं कि

(i) $d(x, y) \leqslant \partial(x, y)$ समस्त x, y के लिए X में

(ii) X पूर्ण है 'd' के प्रति,

(iii) दो प्रतिचित्रण $f, g : X \rightarrow X$ d के प्रति संतत प्रतिचित्रण हैं जिनसे तुष्टि होती है कि

$$\partial(f(x), g(y)) \leqslant a_1\, \partial(x, y)+a_2\{\partial(x, f(x))+\partial(y, g(y))\}$$
$$+a_3\{\partial(x, g(y))+\partial(y, f(x))\} +a_4\left\{\frac{\partial(x, g(y))\, \partial(x, f(x))}{\partial(x, y)}\right\}$$
$$+a_5\left\{\frac{\partial(x, g(y))\, \partial(y, g))}{\partial\, f(x), g(y))}\right\} \qquad \text{(A)}$$

X में समस्त x, y के लिये जहाँ a_1, a_2, a_3, a_4 तथा a_5 अनृण हैं जिससे कि

$$a_1+2(a_2+a_3+a_4+a_5)<1.$$

तब X में f तथा g का अद्वितीय समान स्थिर विन्दु होता है।

उपपत्ति : माना x_0 X में यादृच्छिक है तथा X के अनुक्रम $\{x_n\}$ को निम्नवत् परिभाषित किया जाये।

$$x_1=f(x_0),\ x_2=g(x_1)$$

अर्थात्

$$x_{2n+1}=f(x_{2n}),\ x_{2n+2}=g(x_{2n+1})$$

क्योंकि $n=1, 2, 3, \ldots\ldots$ तब प्रतिवन्ध (A) से

$$\partial(x_1, x_2)=\partial(f(x_0), g(x_1))$$

$$\leqslant a_1\,\partial(x_0, x_1)+a_2\{\partial(x_0, x_1)+\partial(x_1, x_2)\}+a_3\{\partial(x_0, x_2)+\partial(x_1, x_1)\}$$

$$+a_4\left\{\frac{\partial(x_0, x_2)\,\partial(x_0, x_1)}{\partial(x_0, x_1)}\right\}+a_5\left\{\frac{\partial(x_0, x_2)\,\partial(x_1, x_2)}{\partial(x_1, x_2)}\right\}$$

अत:

$$\partial(x_1, x_2)\leqslant\frac{a_1+a_2+a_3+a_4+a_5}{1-a_2-a_3-a_4-a_5}\,\partial(x_0, x_1)$$

$$=h(x_0, x_1)$$

जहाँ

$$\frac{a_1+a_2+a_3+a_4+a_5}{1-a_2-a_3-a_4-a_5}=h,\ h\in(0, 1)$$

सामान्यतया

$$\partial(x_n, x_{n+1})\leqslant h^n\,\partial(x_0, x_1)$$

यदि $m>n$,

$$\partial(x_n, x_m)\leqslant\frac{h^n}{1-h}\,\partial(x_0, x_1)\quad \text{क्योंकि}\ m>n$$

इसका अर्थ हुआ कि $\{x_n\}$ d के प्रति कौशी अनुक्रम है। चूँकि

$$d(x, y)\leqslant\partial(x, y)$$

X में समस्त x, y के लिये अत: $\{x_n\}$ d के प्रति कौशी अनुक्रम है। चूँकि X दूरीक d के प्रति प्रतिबन्ध (ii) के अन्तर्गत सम्पूर्ण है अत: $\{x_n\}$ की एक सीमा u है X में। अर्थात्

$$\lim_{n\to\infty}(x_{2n})=u.$$

दूरीक d के प्रति f के सांतत्य से हमें

$$f(u)=f\lim_{n\to\infty}(x_{2n})=\lim_{n\to\infty}f(x_{2n})=x_{2n+1}=u$$

प्राप्त है। इस तरह u एक स्थिर विन्दु है f का X में।

इसी प्रकार g के सांतत्य से यह दिखलाया जा सकता कि $g(u)=u$ । अतः u एक समान स्थिर विन्दु है f तथा g का ।

मानाकि u तथा v दो स्पष्ट समान स्थिर विन्दु हैं f तथा g के ।
तो

$$\partial(u, v)=\partial(f(u), g(v)) \leqslant a_1\, \partial(u, v)+a_2\{\partial(u, f(u))+\partial(v, g(v))\}$$

$$+a_3\{\partial(u, g(v))+\partial(v, f(u))\}+a_4\left\{\frac{\partial(u, g(v))\, \partial(u, f(u))}{\partial(u, v)}\right\}$$

$$+a_5\left\{\frac{\partial(u, g(v))\, \partial(v, g(v))}{\partial(f(u), g(v))}\right\}$$

अतः $\partial(u, v) \leqslant (a_1+2a_3)\, \partial(u, v)$ विरोधाभास है क्योंकि

$$a_1+2a_3 \leqslant a_1+2(a_2+a_3+a_4+a_5)<1.$$

अतः f तथा g का अद्वितीय समान स्थिर विन्दु होता है ।

टिप्पणी (1) $a_2=a_3=a_4=a_5=0$ एवं $f(x)=g(x)$ मानने पर हमें माया का प्रमेय प्राप्त होता है ।

(2) $a_5=a_4=0$, लेने पर हमें इसेकी का प्रमेय प्राप्त होता है ।

प्रमेय 4 : मानाकि X एक दूरीक समष्टि है दो दूरीकों d तथा ∂ से युक्त

$$T_i\ (i=1, 2, 3, 4. \ldots k.)$$

X के संतत प्रतिचित्रणों के सान्त परिवार का है । मान लो कि

(i) $d(x, y) \leqslant \partial(x, y)$ समस्त x, y के लिये X में

(ii) X पूर्ण है d के प्रति

(iii) $T_i\, T_j=T_j\, T_i\ (i, j=1, 2, 3, \ldots\ldots k)$

(iv) धनात्मक पूर्णांक की दो प्रणालियाँ हैं

$$(m_1, m_2, \ldots\ldots m_k) \text{ एवं } (n_1, n_2, \ldots\ldots n_k)$$

जिससे कि x, y के लिये X में । तो

$$\delta\left(T_1^{m_1}, T_1^{m_2}, \ldots T_k^{m_k}(x), T_1^{n_1}, T_2^{n_2} \ldots T_k^{n_k}(y)\right)$$

$$\leqslant a_1\, \partial(x, y)+a_2\Big\{ \partial\Big(x,\ T_1^{m_1} T_2^{m_2} \dots T_k^{m_k}(x)+\partial\Big(y,\ T_1^{n_1} T_2^{n_2} \dots T_k^{n_k}(y)\Big\}$$

$$+a_3\Big\{ \partial\Big(x,\ T_1^{n_1} T_2^{n_2} \dots T_k^{n_k}(y)\Big), \partial\Big(y,\ T_1^{m_1} T_2^{m_2} \dots T_k^{m_k}(x)$$

$$+a_4\Big\{ \frac{\partial\Big(x,\ T_1^{n_1} T_2^{n_2} \dots T_k^{n_k}(y)\Big), \partial\Big(x,\ T_1^{m_1} T_2^{m_2} \dots T_k^{m_k}(a)\Big)}{\partial(x, y)}\Big\}$$

$$+a_5\left\{ \frac{\partial\Big(x,\ T_1^{n_1} T_2^{n_2} T_5^{n_3} \dots T_k^{n_k}(y)\Big), \partial\Big(y,\ T_1^{n_1} T_2^{n_2} T_3^{n_3} \dots T_k^{n_k}(y)\Big)}{\partial\Big(T_1^{m_1} T_2^{m_2} \dots T_k^{m_k}(x),\ T_1^{n_1} T_2^{n_2} \dots T_k^{n_k}(y)}\right\}$$

जहाँ a_1, a_2, a_3, a_4 तथा a_5 अनृण हैं जिससे कि

$$a_1+2(a_2+a_3+a_4+a_5)<1$$

तब T_1 $(i=1, 2, \dots, k)$ का एक अद्वितीय समान स्थिर बिन्दु होता है।

उपपत्ति : माना

$$f=T_1^{m_1} T_2^{m_2} \dots T_k^{m_k}$$

$$g=T_1^{n_1} T_2^{n_2} \dots T_k^{n_k}$$

तो f तथा g संतत हैं। अतः प्रमेय (A) से f तथा g का X में एक अद्वितीय समान स्थिर बिन्दु u होता है। अतः

$$f(u)=g(u)=u$$

तथा प्रत्येक i के लिए

$$T_i(f(u))=T_i(g)\ (u)=T_i(u)$$

$$f(T_i(u))=g(T_i(u))=T_i(u)$$

अतः $T_i(u)$ $(i=1, 2, 3, \dots k)$ स्थिर बिन्दु है f तथा g का। हमें f तथा g की अद्वितीयता से $T_i(u)=u$ $(i=1, 2, 3, \dots k)$ प्राप्त होता है। अतः प्रमेय की उपपत्ति पूरी हुई।

निर्देश

1. माया, एम० जी०, Rend. Semi. Mat. Universita dipadova, 1968, **40**, 139-143.
2. इसेकी, के०, Rend. Semi. Mat. Universita dipadova, 1975, **53**, 13-14.
3. इस्त्रातेस्कु, वी० आई०, Introducere in teoria punetelor, fixe- Bucarest, 1973.

Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, Vol. 34, No. 3, 1991

बहुचर A-फलन के लिए सान्त श्रेणी

आर० के० सक्सेना तथा यशवन्त सिंह
गणित तथा सांख्यिकी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

[प्राप्त—मई 16, 1990]

सारांश

लेखकों ने बहुचर A-फलन के लिए एक सान्त श्रेणी प्राप्त की है जो सक्सेना तथा माथुर के परिणाम को सार्वीकृत करती है। कुछ रोचक दशाएँ भी दी गई हैं।

Abstract

A finite series for the multivariate A-function. *By* R. K. Saxena and Yashwant Singh, Department of Mathematics and Statistics, University of Jodhpur, Jodhpur.

The authors derive a finite series for the multivariate A-function which generalizes the result due to Saxena and Mathur[6]. Some interesting cases are also given.

1. परिभाषा

गौतम तथा गोयल[2] का अनुसरण करते हुए हम बहुचर A-फलन को निम्नवत् परिभाषित करते हैं—

$$A[z_1, \ldots, z_r]$$

$$= A_{p,\, q;\, N}^{m,\, n;\, M}\left[\begin{matrix} z_1 \\ \vdots \\ z_r \end{matrix}\left|\begin{matrix} \left(a_j; A_j', \ldots, A_j^{(r)}\right)1, p; \left(\tau_j', C_j'\right)1, p_1; \ldots; \left(\tau_j^{(r)}, C_j^{(r)}\right)1, p_r \\ \left(b_j; B_j', \ldots, B_j^{(r)}\right)1, p; \left(d_j', D_j'\right)1, q_1; \ldots; \left(d_j^{(r)}, D_j^{(r)}\right)1, q_r \end{matrix}\right.\right]$$

$$= \frac{1}{(2\pi w)^r}\int_{L1} \cdots \int_{L1} \theta_1(s_1) \ldots \theta_r(s_r)\phi(s_1, \ldots, s_r) z_1^{s_1} \ldots z_r^{s_r}\, ds_1 \ldots ds_r \tag{1.1}$$

जहाँ $w=\sqrt{-1}$ तथा निम्नलिखित परिभाषाएँ सत्य हैं

$$M=m_1, n_1; \ldots; m_r, n_r \qquad N=p_1, q_1; \ldots; p_r. q_r$$

$$\theta_i(s_i)=\frac{\prod_{j=1}^{m_i} \Gamma\left(d_j^{(i)}-D_j^{(i)} s_i\right) \prod_{j=1}^{n_i} \Gamma\left(1-\tau_j^{(i)}+C_j^{(i)} s_i\right)}{\prod_{j=m_i+1}^{q_i} \Gamma\left(1-d_j^{(i)}+D_j^{(i)} s_i\right) \prod_{j=n_i+1}^{p_i} \Gamma\left(\tau_j^{(i)}-C_j^{(i)} s_i\right)}, \forall i \in\{1, \ldots, r\} \tag{1.2}$$

$$\phi(s_1, \ldots, s_r)=\frac{\prod_{j=1}^{n} \Gamma\left(1-a_j+\sum_{i=1}^{r} A_j^{(i)} s_i\right) \prod_{j=1}^{m} \Gamma\left(b_j-\sum_{i=1}^{r} B_j^{(i)} s_i\right)}{\prod_{j=n+1}^{p} \Gamma\left(a_j-\sum_{i=1}^{r} A_j^{(i)} s_i\right) \prod_{j=m+1}^{q} \Gamma\left(1-b_j+\sum_{i=1}^{r} B_j^{(i)} s_i\right)} \tag{1.3}$$

यहाँ $m, n, p, q, m_j, n_j, p_j$ तथा q_j अनृण पूर्णांक हैं तथा समस्त $a_j', b_j', d_j^{(i)\prime}, \tau_j^{(i)\prime}, B_j^{(r)\prime}$ संमिश्र संख्याएँ हैं।

r-चरों वाले A-फलन को परिभाषित करने वाला बहुगुण समाकल पूर्णतया अभिसारी होता है यदि

$$\xi_i^*=O, \eta_i>O \text{ तथा } |\arg (\zeta_i)z_k|<\frac{\pi}{2} \eta_i$$

जहाँ

$$\zeta_i=\prod_{j=1}^{p}\left\{A_j^{(i)}\right\}^{A_j^{(i)}} \prod_{j=1}^{q}\left\{B_j^{(i)}\right\}^{-B_j^{(i)}} \prod_{j=1}^{q_i}\left\{D_j^{(i)}\right\}^{D_j^{(i)}} \prod_{j=1}^{p_i}\left\{C_j^{(i)}\right\}^{-C_j^{(i)}}, \quad i \in\{1, \ldots, r\};$$

$$\xi_i^*=I_m\left[\sum_{j=1}^{p} A_j^{(i)}-\sum_{j=1}^{q} B_j^{(i)}+\sum_{j=1}^{q_i} D_j^{(i)}-\sum_{j=1}^{p_i} C_j^{(i)}\right], \quad i \in\{1, \ldots, r\};$$

$$\eta_i=R\left[\sum_{j=1}^{n} A_j^{(i)}-\sum_{j=n+1}^{p} A_j^{(i)}+\sum_{j=1}^{m} B_j^{(i)}-\sum_{j=m+1}^{q} B_j^{(i)}+\sum_{j=1}^{m_i} D_j^{(i)}\right.$$

$$\left.-\sum_{j=m_i+1}^{q_i} D_j^{(i)}+\sum_{j=1}^{n_i} C_j^{(i)}-\sum_{j=n_i+1}^{p_i} C_j^{(i)}\right], \quad \in\{1, \ldots, r\}.$$

यदि हम सारे A_j', B_j', C_j', तथा D_j' को सत्य तथा धनात्मक मान लें तथा $m=0$ तो A-फलन श्रीवास्तव तथा पंडा[7] के बहुचर H-फलन में समानीत हो जाता है जो स्वयं सक्सेना[6] द्वारा प्रदत्त r-चरों वाले H-फलन का सार्वीकरण है।

यदि सारे A_j', B_j', C_j' तथा D_j' सत्य तथा धनात्मक हों तथा $m=n=p=q=0$, तो (1.1) r फाक्स के H-फलनों के गुणनफल में समानीत हो जाता है।

दूसरी ओर यदि सारे A_j', B_j', C_j' तथा D_j' सत्य तथा धनात्मक हों, $r=1$ तथा $m_1=p_1=q_1=n_1=0$ तो (1.1) फाक्स में H-फलन में समानीत हो जाता है।

A-फलन का विस्तृत विवरण गौतम तथा गोयल के मूल शोधपत्र[2] में देखा जा सकता है।

2. मुख्य परिणाम

जिस मुख्य सूत्र को सिद्ध करना है वह है—

$$\sum_{t=0}^{u-1}(c+2t)(-z_1)^{-t}\dots(-z_r)^{-t}\, A^{m+1,\, n;\; M}_{p+1,\, q+1;\; N}\left[\begin{matrix} z_1\\ \vdots\\ z_r\end{matrix}\middle|\begin{matrix}(a_1,[(1)]);\, P_1(t);\, (c+a_1-1+t;\, 1);\, (c+a_1+2t,\, 1);\, P_2(t)\\ Q_1(t);\, Q_2(t)\end{matrix}\right]$$

$$= A^{m,\, n;\, M}_{p,\, q;\; N}\left[\begin{matrix} z_1\\ \vdots\\ z_r\end{matrix}\middle|\begin{matrix}(a_1,[(1)]);\, P_1(0);\, P_2(0)\\ Q(0)\; ;\quad Q_2(0)\end{matrix}\right]$$

$$-(-z_1)^{-u}\dots(-z_r)^{-u}\, A^{m+1,\, n;\; M}_{p+1,\, q+1;\; N}\left[\begin{matrix} z_1\\ \vdots\\ z_r\end{matrix}\middle|\begin{matrix}(a_1,[(1)]);\, P_1(u);\, (c+a_1+u-1,\, 1);\, (c+a_1+2u-1;\, 1);\, P_2(u)\\ Q_1(u)\quad ;\quad Q_2(u)\end{matrix}\right] \tag{2.1}$$

जहाँ u एक धन पूर्णांक है और सामान्यतया प्राचलों के सेट को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है—

$$P_1(v)=\left(a_2+vA_2^{(i)}\,;\; A_2'\,;\;\dots;\; A_2^{(r)}\right);\dots;\left(a_p+vA_p^{(i)}\,;\; A_p'\,;\dots;A_p^{(r)}\right):$$

$$Q_1(v)=\left(b_1+vB_1^{(i)}\,;\; B_1'\,;\dots;B_1^{(r)}\right);\;\dots;\left(b_q+vB_q^{(i)};B_q';\dots;B_q^{(r)}\right);$$

$$P_2(v)=\left(\tau_j'+C_j'v;\, C_j'\right)_{1,p_1};\dots;\left(\tau_j^{(r)}+C_j^{(r)}v;\, C_j^{(r)}\right)_{1,p_r};$$

$$Q_2(v)=\left(d_j'+D_j'v;\, D_j'\right)_{1,q_1};\dots;\left(d_j^{(r)}+D_j^{(r)}v;\, D_j^{(r)}\right)_{1,q_r};$$

$[(1)]=1, 1\dots, 1$ (r बार)

(2.1) की उपपत्ति : जिस गौण सूत्र को सिद्ध करना है वह—

$$A^{m,n;\,M}_{p,q;\,N}\left[\begin{matrix} z_1 \\ \vdots \\ z_r \end{matrix}\left|\begin{matrix} (a_1, [(1)]; P_1(0); P_2(0) \\ Q_1(0); \quad Q_2(0) \end{matrix}\right.\right]$$

$$=\sum_{t=0}^{\infty}(c+2t)(-z_1)^{-t}\ldots(-z)^{-t}\,A^{m+1,\;n;\;M}_{p+1,\;q+1;\;N}\left[\begin{matrix} z_1 \\ \vdots \\ z_r \end{matrix}\left|\begin{matrix} (a_1, \quad [(1)]); \\ (c+a_1-1+t,\;1) \end{matrix}\right.\right.$$

$$\left.\begin{matrix} P_1(t); (c+a_1+2t,\;1); P_2(t) \\ Q_1(t) \quad ; Q_2(t) \end{matrix}\right] \tag{2.2}$$

जहाँ $R(c)>0$ तथा साथ ही (2.1) की वैधता के प्रतिबन्ध भी। (2.2) की उपपत्ति में हम निम्नलिखित सूत्र का उपयोग करेंगे—

$${}_3F_2\left(\begin{matrix} 1-a_1+s,\;\frac{1}{2}c+1,\;1 \\ c+a_1-s,\;\frac{1}{2}c \end{matrix};\;-1\right)=\frac{\Gamma(c+a_1-s)\Gamma(c)}{\Gamma(c+a_1-s-1)\Gamma(c+1)} \tag{2.3}$$

जहाँ $R(c+2a_1-2-2s)>0$, (2.3) को व्हिपल सूत्र [1, p. 190) से व्युत्पन्न किया जा सकता है

$${}_4F_3\left(\begin{matrix} \alpha,\;\frac{1}{2}\alpha+1,\;\beta,\;\gamma \\ \frac{1}{2}\alpha,\;\alpha-\beta+1,\;\alpha-\gamma+1 \end{matrix};\;-1\right)=\frac{\Gamma(\alpha-\beta+1)\Gamma(\alpha-\gamma+1)}{\Gamma(\alpha+1)\Gamma(\alpha-\beta-\gamma+1)} \tag{2.4}$$

जहाँ $R(\alpha-2\beta-2\gamma)>-2$, यदि हम $\alpha=c$, $\beta=1$, $\gamma=1-a_1+s$ रखें।

(2.2) को सिद्ध करने के लिए बहुचर A-फलन के स्थान पर दक्षिण पक्ष में (1.1) रखें; s_i के स्थान पर s_i+t रखें, संकलन तथा समाकलन के क्रम को बदल दें और यह ध्यान रखें कि

$$(c+2t)=\frac{c(\frac{1}{2}c+1)_t}{(\frac{1}{2}C)_t}.$$

तो यह व्यंजक निम्न में रूपान्तरित हो जाता है—

$$\frac{1}{(2\pi\omega)^r}\int_{L_1}\cdots\int_{L_r}\frac{\prod_{j=1}^{m_i}\Gamma\left(d_j^{(i)}-D_j^{(i)}s_i\right)\prod_{j=1}^{n_i}\Gamma\left(1-\tau_j^{(i)}+C_j^{(i)}s_i\right)}{\prod_{j=m_1+1}^{q_i}\Gamma\left(1-d_j^{(i)}+D_j^{(i)}s_i\right)\prod_{j=n_2+1}^{p_i}\Gamma\left(\tau_j^{(i)}-C_j^{(i)}s_i\right)}$$

$$\frac{C\Gamma\left(C+a_1-\sum_{i=1}^{r} s_i-1\right)\Gamma\left(1-a_1+\sum_{i=1}^{r} s_i\right)\prod_{j=2}^{n}\Gamma\left(1-a_j+\sum_{i=1}^{r} A_j^{(i)} s_i\right)\prod_{j=1}^{m}\Gamma\left(b_j-\sum_{i=1}^{r} B_j^{(i)} s_i\right)}{\prod_{j=n+1}^{p}\Gamma\left(a_j-\sum_{i=1}^{r} A_j^{(i)} s_i\right)\prod_{j=m+1}^{q}\Gamma\left(1-b_j+\sum_{i=1}^{r} B_j^{(i)} s_i\right)\Gamma\left(c+a_1-\sum_{i=1}^{r} s_i\right)}$$

$$\cdot z_1^{s_1}\ldots z_r^{s_r}\; {}_3F_2\left[\begin{matrix}1-a_1+\sum_{i=1}^{r} s_i,\ \tfrac{1}{2}c+1,\ 1\\ c+a_1-\sum_{i=1}^{r} s_i,\ \tfrac{1}{2}c\end{matrix};-1\right] ds_1\ldots ds_r$$

यह परिणाम (2.3) से निकलता है।

(2.2) से यह निकलता है कि

$$A^{m+1,\,n:\;M}_{p+1,\,q+1;\;N}\left[\begin{matrix}z_1\\ \vdots\\ z_r\end{matrix}\middle|\begin{matrix}(a_1,[(1)];\,P_1(u);\,(c+a_1+2u-1,\,1);\,P_2(u)\\ (c+a_1+u-1,\,1);\,Q_1(u);\,Q_2(u)\end{matrix}\right]$$

$$=\sum_{t=0}^{\infty}[c+2(t+u)](-z_1)^{-t}\ldots(-z_r)^{-t}\,A^{m+1,\,n;\;M}_{p+1,\,q+1;\;N}\left[\begin{matrix}z_1\\ \vdots\\ z_r\end{matrix}\middle|\begin{matrix}(a_1,[(1)]);\,P_1(u+t);\,(c+a_1+2(u+t);1);\,P_2(u+t)\\ (c+a_1+u+t-1,\,1);\;\;Q_1(u+t);\;\;Q_2(u+t)\end{matrix}\right]$$

जहाँ $R(c+2u)>0$.

यदि हम u को धन पूर्णांक मानें, दोनों पक्षों में $(-z_1)^{-u}\ldots(-z)^{-u}$ से गुणा करें और $(u+t)$ के स्थान पर t रखें तो हमें निम्नलिखित परिणाम प्राप्त होगा—

$$(-z_1)^{-u}\ldots(-z_r)^{-u}\,A^{m+1,\,n;\;M}_{p+1,\,q+1;\;N}\left[\begin{matrix}z_1\\ \vdots\\ z_r\end{matrix}\middle|\begin{matrix}(a_1,[(1)]);\,P_1(u);\,(c+a_1+2u-1,\,1);\,P_2(u)\\ (c+a_1+u-1,\,1);\,Q_1(u),\qquad Q_2(u)\end{matrix}\right]$$

$$=\sum_{t=u}^{\infty}(c+2t)(-z_1)^{-t}\ldots(-z_r)^{-t}\,A^{m+1,\,n;\;M}_{p+1,\,q+1;\;N}\left[\begin{matrix}z_1\\ \vdots\\ z_r\end{matrix}\middle|\begin{matrix}(a_1,[(1)]);\,P_1(t);\,(c+a_1+2t,\,1);\,P_2(t)\\ (c+a_1+t-1,\,1);\,Q_1(t);\qquad Q_2(t)\end{matrix}\right] \tag{2.5}$$

अत: (2.2) से घटाने पर हमें (2.1) प्राप्त होता है ।

3. विशिष्ट दशाएँ

$r=1, m_1=n_1=p_1=q_1=0$ रखकर (2·1) से हम सक्सेना तथा माथुर[6] के परिणाम को प्राप्त कर सकते हैं—

$$\sum_{t=0}^{r-1} (c+2t)(-x)^t H_{p+1,\, q+1}^{m+1,\quad n}\left[x\,\middle|\,\begin{matrix}(a_1, 1), (a_2+tA_2, A_2); \ldots; (a_p+tA_p, A_p), (c+a_1+2t, 2)\\ (c+a_1+t-1, 1); (b_1+tB_1, B_1)\ldots, (b_q+tB_q, B_q)\end{matrix}\right]$$

$$=H_{p,\ q}^{m,\ n}\left[x\,\middle|\,\begin{matrix}(a_1, 1), \ \ldots, (a_p, A_p)\\ (b_1, B_1), \ldots, (b_q, B_q)\end{matrix}\right]$$

$$-(-x)^{-r} H_{p+1,\, q+1}^{m+1,\quad n}\left[x\,\middle|\,\begin{matrix}(a_1, 1), (a_2+rA_2, A_2), \ldots; (a_p+rA_p, A_p)(c+a_1+2r+1, 1)\\ (c+a_1+r-1, 1), (b_1+rB_1, B_1), \ldots, (b_q+rB_q, B_q)\end{matrix}\right] \qquad (3.1)$$

जहाँ r एक धन पूर्णांक है जो स्वयं जैन के सूत्र[3] का सार्वीकरण है । H-फलन का विस्तृत विवरण मथाई तथा सक्सेना[4] में प्राप्त है। अन्त में, यदि हम सारे A_j', B_j', C_j', D_j' को सत्य तथा धनात्मक मान लें तथा $m=0$, तो बहुचर A-फलन श्रीवास्तव तथा पंडा[7] के बहुचर H-फलन में समानीत हो जाता है। फलत: हमें निम्न परिणाम प्राप्त होता है—

$$\sum_{t=0}^{u-1} (c+2t)(-z_1)^{-t}\ldots(-z_r)^{-t} A_{p+1,\, q+1;\, N}^{1,\quad n;\quad M}\left[\begin{matrix}z_1\\ \vdots\\ z_r\end{matrix}\,\middle|\,\begin{matrix}(a_1, [(1)]); P_1(t); (c+a_1+2t; 1); P_2(t)\\ (c+a_1-1+t; 1); Q_1(t); Q_2(t)\end{matrix}\right]$$

$$=H_{p,\, q;\ N}^{O,\, n;\, M}\left[\begin{matrix}z_1\\ \vdots\\ z_r\end{matrix}\,\middle|\,\begin{matrix}(a_1, [(1)]); P_1(0); P_2(0)\\ Q_1(0); \qquad Q_2(0)\end{matrix}\right] -(-z_1)^{-u}\ldots(-z_r)^{-u}$$

$$A_{p+1,\, q+1;\, N}^{1,\quad n;\quad M}\left[\begin{matrix}z_1\\ \vdots\\ z_r\end{matrix}\,\middle|\,\begin{matrix}(a_1, [(1)]); P_1(u); (c+a_1+2u-1, 1); P_2(u)\\ (c+a_1+u-1; 1); \qquad Q_1(u); \qquad Q_2(u)\end{matrix}\right] \qquad (3.2)$$

निर्देश

1. एर्डेल्यी, ए० इत्यादि, Higher transcendental functions, Vol. I, McGraw-Hill, New York, 1953.

2. गौतम, जी० पी०, असगर अली, एस० तथा गोयल, ए० एन०, **विज्ञान परिषद अनुसंधान पत्रिका**, 1986, **29**, 67-81.

3. जैन, आर० एन०, Math. Japon, 1966, **11**, 129-131.

4. मथाई, ए० एम० तथा सक्सेना, आर० के०, The H-function with applications in Statistics and Other Disciplines, John Wiley and Sons, New York, 1978.

5. सक्सेना, आर० के०, Kyungpook Math, J., 1974, **14**, 255-259.

6. सक्सेना, आर० के० तथा माथुर, एस० एन०, Univ. Rev. Ser. A. 1971, **21**, 49-52.

7. श्रीवास्तव, एच० एम० तथा पण्डा, आर०, J. Reine Angew. Math. 1976, **288**, 129-145.

Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, Vol. 34, No. 3, 1991

वाराणसी के गंगा अवसाद में कार्बनिक पदार्थ एवं आविषालु धातुएँ

सच्चिदानन्द सिंह, अजय श्रीवास्तव तथा महाराज नारायण मेहरोत्रा
भौमिकी विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

[प्राप्त—मई 4, 1991]

सारांश

वाराणसी के गंगा अवसाद में भारी धातुओं के बितरण की विवेचना अवसाद में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ की मात्रा के आधार पर की गई है। अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि अवसाद में विद्यमान कार्बनिक पदार्थ एवं आविषालु धातुओं की मात्रा में स्पष्ट सम्बन्ध है। सामान्यतया जहाँ अवसाद में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक है वहीं आविषालु धातुओं का संकेन्द्रण भी अधिक है, तथापि एक-दो स्थानों पर इसका अपवाद भी देखने को मिला है।

Abstract

Organic content and toxic metals in Varanasi Ganga sediments. *By* Sachidanand Singh, Ajai Srivastava and Maharaj Narain Mehrotra, Geology Department, Banaras Hindu University, Varanasi (U. P.).

The distributional behaviour of the heavy metals in the Varanasi Ganga sediments has been discussed in the light of influence of content of organic mater present in the sediments. It has been inferred that there is a clear relationship in between organic matter content and toxic metals in the sediments. Fairly rich concentration of toxic metals is noted in the sediments which contain comparatively high content of organic matter with a few exceptions.

अवसाद में विद्यमान कार्बनिक पदार्थ की मात्रा का कुछ भाग प्रकृति की देन है तथा कुछ मनुष्य के कार्यकलापों के फलस्वरूप प्राप्त होता है। एक ओर अपक्षय एवं जैविक प्रक्रियाओं तथा दूसरी ओर

मानवकृत कार्यों, यथा कृषि कार्य, औद्योगिक प्रक्रम, शहरी सीवेज के उत्प्रवाह, गन्दगी के निस्तारण एवं जंगल की आग आदि से भी जलीय अवसाद में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में अभिवृद्धि होती है।

कार्बनिक पदार्थ में कार्बनिक यौगिक एवं संश्लेषित कार्बनिक पदार्थ होते हैं। मृदा में यह ह्यूमिक अम्ल के रूप में विद्यमान रहता है। संश्लेषित कार्बनिक पदार्थ औद्योगिक एवं कृषि कार्यों में प्रयुक्त रासायनिक पदार्थों से उत्सर्जित होता है। पीला कार्बनिक अम्ल दलदली भूमि/जल में अधिकतर पाया जाता है।

सैक्सवी[1] ने अवसाद में धातुओं एवं कार्बनिक पदार्थ के यौगिकीकरण के लिए तीन मुख्य क्रियाओं को उत्तरदायी बतलाया है :

(1) धातु आयन एवं कार्बनिक संलग्नी (लिगैंड) में परस्पर क्रिया के फलस्वरूप निर्मित स्पीशीज प्रत्यक्षतः अवसादीय परत पर निक्षेपित या उसकी सतह पर आयोजित हो जाते हैं।

(2) जलीय जीवों के अवसान पर मुक्त धातुओं के आयन कार्बनिक-बहुल अवसाद द्वारा शोषित कर लिये जाते हैं।

(3) प्राकृतिक जल में (जिनमें कार्बनिक संलग्नी भी होते हैं) विद्यमान घुलनशील धातुयें अवसाद की सतह पर अवशोषित होती हैं।

कार्बनिक पदार्थ एवं धातुओं के आयनों के मध्य शोषण, संकरण, स्कंदन एवं ऊर्णन क्रियाएँ सम्भव हैं।

रशीद[2] ने यह निष्कर्ष निकाला है कि कुछ निश्चित धातुएँ, यथा—कोबाल्ट, कापर, मोलिब्डेनम, निकिल, लेड एवं जिंक कार्बनिक पदार्थों से ऊर्णन के समय ही या उसके बाद पर्याप्त मात्रा में जलीय तन्त्र से निकल जाती हैं।

सिगर[3] ने बतलाया है कि घुलित कार्बनिक पदार्थ में धातुओं के संकुल निर्माण करने एवं घुलनशीलता बढ़ाने तथा उनके आक्सीकृत और अवकृत रूपों को परिवर्तित करने, जलीय तन्त्र में धातुओं की उपलब्धता को बढ़ाने तथा आविषालु स्तर तक पहुँचाने, निलम्बित पदार्थों पर शोषित धात्विक पदार्थों को प्रभावित करने एवं धातुओं की, जिनमें कोलाइड समाहित होते हैं, स्थिरता प्रभावित करने की क्षमता होती है।

जोहनसन[4] के अनुसार कार्बनिक पदार्थ लौह आक्साइड तथा मैंगनीज आक्साइड के साथ क्रिया करके संकर का निर्माण करते हैं जो भारी धातुओं के आयनों के लिए मुख्य शोषक का काम करते हैं।

फॉर्स्टनर एवं विटमैन[5] के अनुसार भी भारी धातुएँ कार्बनिक अणुओं के साथ मिलकर संकुल निर्माण करती हैं।

यहाँ यह कहना उपयुक्त होगा कि अवसादों में उपस्थित मृत्तिका खनिज कार्बनिक पदार्थों के अवशोषण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

प्रयोगात्मक

वाराणसी के गंगा घाट, नाले तथा प्रतिदर्श स्थान चित्र 1 में दिखाये गये हैं। एकत्र नमूनों से कुछ चुने हुए नमूनों का विश्लेषण किया गया। जैविक कार्बन तथा कार्बनिक पदार्थ की प्रतिशत मात्रा ज्ञात की गयी। इसके लिए वाकले तथा ब्लैक[6] की द्रुत अनुमापन विधि अपनायी गयी।

लेश (भारी) धातु विश्लेषण

क्षेत्र के चयनित नमूनों का परमाण्वीय अवशोषण स्पेक्ट्रममिति (एटामिक एबजार्प्शन स्पेक्ट्रोमीटर आई एल जैरेल ऐश मॉडल-11) विधि से विश्लेषण कर लेश धातुओं की जानकारी प्राप्त की गयी। विश्लेषण हेतु, नमूनों को निम्नलिखित विधि से तैयार किया गया—

चयनित नमूनों को अगेट खरल में पीसा गया। ऐल्कोहल डालने से यह प्रक्रिया सरल हो जाती है। इस प्रकार उपलब्ध महीन पाउडर से 100 मिग्रा० मात्रा तोली गयी। इस मात्रा को वायुरोधी टेफ्लान बाम्ब में रखकर उसमें 5 मिली० ऐक्वा रेजिया ($HNO_3 : HCl : : 3 : 1$) तथा 2 मिली० हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल मिलाया। तत्पश्चात् इसे 100° से० 110° से० तक गर्म कर ठण्डा किया गया। यदि ठण्डा होने के बाद भी नमूने के कुछ कण शेष बचे तब पुनः आसुत जल तथा हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल डालकर तीन घण्टा तक गर्म कर पुनः ठण्डा किया गया। इसे प्लास्टिक के मापन फ्लास्क में डालकर तथा आसुत जल मिलाकर 50 मिली० विलयन तैयार कर लिया गया। तत्पश्चात् इसे प्लास्टिक बोतल में भरकर नमूना संख्या लिख दी गयी। इस विलयन को परमाण्वीय अवशोषण स्पेक्ट्रममापी पर विश्लेषित किया गया। मरकरी की लेश मात्राएँ शीत वाष्प विधि द्वारा प्राप्त की गयीं।

परिणाम तथा विवेचना

उपर्युक्त विधियों से प्राप्त भारी धातुओं की मात्रायें, जैविक कार्बन तथा कार्बनिक पदार्थ की प्रतिशत मात्रा सारणी 1 में दी गयी है। इसी सारणी में औसत शेल में विद्यमान भारी धातुओं की मात्रा भी दर्शायी गयी है[7] तथा इन्हीं मानों से क्षेत्र के अवसादों में विद्यमान भारी धातुओं की मात्रा की तुलना की गयी है। (यह इंगित करना आवश्यक है कि तुलनात्मक अध्ययन के लिये अन्य कोई आधार, यथा—गंगा अवसाद में भारी धातुओं की विद्यमानता का कोई मूल आँकड़ा उपलब्ध नहीं है)।

सारणी 1 से स्पष्ट है कि क्षेत्र में कार्बनिक पदार्थ की अधिकतम मात्रा 1.412 प्रतिशत मुख्य सीवर के बायें भाग में तथा न्यूनतम मात्रा 0.066 प्रतिशत अस्सी घाट विपरीत में पाई गई है। घुरहा नाला के बायें मुहाने पर इसकी प्रतिशत मात्रा 1.022 तथा इसके बायें भाग में 0.179 है। दायें तट में रैपुरिया नाला के दाहिने भाग में 0.129, नरायनपुर नाला के दायें भाग में 0.195, सती घाट पर 0.789 तथा कुटिया घाट पर 0.349 प्रतिशत पायी गयी।

सारणी 1

गंगा अवसाद में उपस्थित भारी (लेश) धातुओं तथा जैविक कार्बनिक पदार्थ की मात्रा

क्र० सं०	प्रतिदर्श सं०	प्रतिदर्श की स्थिति	भारी धातुयें पी० पी० एम०							पी० पी० बी०	जैविक कार्बन (प्रतिशत)	जैविक पदार्थ
			Cu	Pb	Ni	Co	Cr	Zn	V	Hg		
1.	VR 2	रैपुरिया घाट नाला (दायाँ मुहाना)	10	<10	10	<10	50	—	—	70	0.075	0.129
2.	VR 6	नरायनपुर नाला (दायाँ भाग)	10	<10	25	<10	50	—	—	70	0.113	0.195
3.	VR 13	घुरहा नाला (बायाँ मुहाना)	150	—	70	34	61	97	6.6	65	0.593	1.022
4.	VR 18	घुरहा नाला (दायां मुहाना से 100 मी० पश्च)	329	<10	73	<10	125	250	5.2	65	0.104	0.179
5.	VR 24	सतीघाट (रामनगर)	20	<10	10	10	100	—	—	90	0.458	0.789
6.	VR 27	कुटिया घाट (रामनगर)	10	<10	<10	<10	70	—	—	80	0.203	0.342

7.	VR 32	अस्सी घाट विपरीत	<10	<10	10	<10	30	98	4.5	80	0.038	0.066
8.	VL 12	सामने घाट	<10	<10	<10	10	15	—	—	80	0.334	0.576
9	VL 57	अस्सी नाला प्र.ग.म (45 मी० पूर्व)	60	<10	73	22	129	107	3.4	—	0.068	0.117
10.	VL 81	अस्सी घाट	33	<10	46	10	79	63	2.9	—	0.083	0.143
11.	VL 92	हरिश्चन्द्र घाट	82	<10	38	26	46	120	3.7	—	0.153	0.164
12.	VL 106	प्रह्लाद घाट	50	60	50	10	150	—	—	80	0.113	0.195
13.	VL 114	मुख्य सीवर (बायाँ मुहाना)	173	—	73	21	—	186	9.8	105	0.819	1.412
14.	VL 123	आदिकेश्वर घाट	160	50	45	15	200	193	4.6	220	0.623	1.074
भारी धातुओं के लिए शेलमान[7]			45	20	68	19	90	95	3.7	400		

— =निर्धारण नहीं हुआ
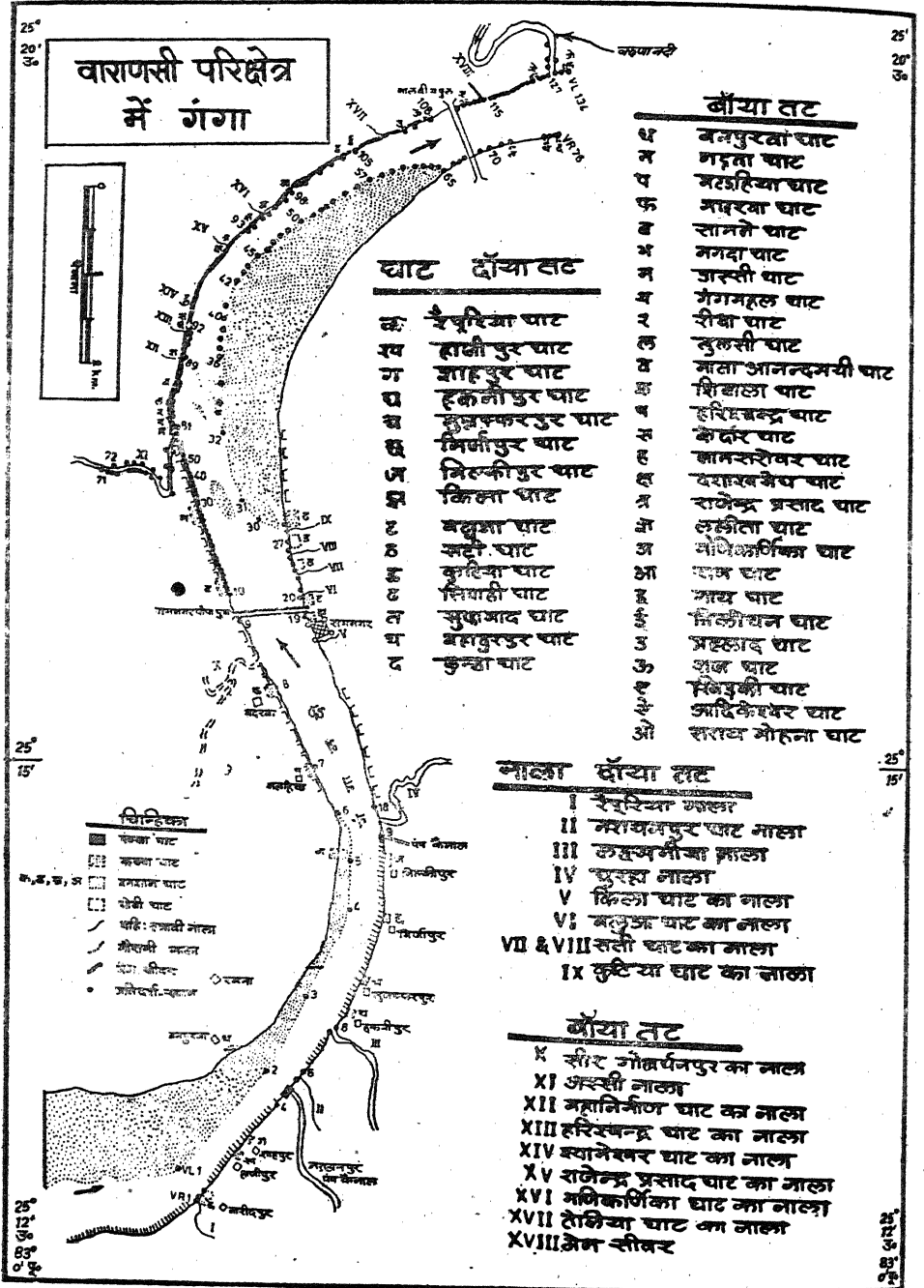
चित्र 1 : घाट, नाले व प्रतिदर्श स्थान

बायें तट पर सामने घाट पर कार्बनिक पदार्थ की मात्रा 0.576, अस्सी नाला पूर्व में 0.117 अस्सी घाट पर 0.143, हरिश्चन्द्र घाट पर 0.164, प्रह्लाद घाट पर 0.195, आदिकेश्वर घाट (पश्च) पर 1.074 प्रतिशत पायी गयी।

औसतन शेल में विद्यमान भारी धातुओं के लिए दिये गये मानों से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि गंगा के दायें तट पर घुरहा नाला (बाँया मुहाना) और बायें तट पर मुख्य सीवर (बाँया मुहाना) तथा आदिकेश्वर घाट पर भारी धातुओं का सान्द्रण कई गुना अधिक है। इन स्थानों पर कार्बनिक पदार्थ की औसत मात्रा 1.169 प्रतिशत है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कार्बनिक पदार्थ की अधिकता के कारण सारणी 1 में दी गई धातुयें शोषण, संकरण आदि क्रियाओं के द्वारा अवसाद में एकत्रित हो रही हैं तथापि कुछ स्थानों, जैसे—घुरहा नाला (दायाँ मुहाना से 100 मीटर पश्च), अस्सी नाला संगम (45 मीटर पूर्व), हरिश्चन्द्र घाट तथा प्रह्लाद घाट के अवसाद में भी धातुओं का सान्द्रण अधिक है। यद्यपि इन स्थानों पर कार्बनिक पदार्थ की औसत मात्रा (0.164 प्रतिशत) अपेक्षाकृत कम है, तथापि इन स्थानों पर अवसाद का कण-साइज, यथा—मृत्तिका खनिज एवं कार्बोनेट पदार्थ की अपेक्षाकृत बहुलता है जो अवसाद में भारी धातुओं के सान्द्रण में सहायक हुए हैं।

इस विवेचना से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के अवसाद में भारी धातुओं के सान्द्रण में कार्बनिक पदार्थ का विशेष योगदान है। इन स्थानों पर बहुत से हानिकारक पदार्थ—आविषालु धातुएँ यथा लेड, जिंक, मरकरी, कॉपर, क्रोमियम, निकिल आदि का अवसाद द्वारा शोषण हुआ है। यह भी स्पष्ट है कि अवसाद में धातुओं के सान्द्रण में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा का भी योगदान है।

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस शोध प्रपत्र का कार्य पर्यावरण विभाग, भारत सरकार द्वारा गंगा अवसाद परियोजना को प्रदत्त वित्तीय सहायता के अन्तर्गत किया गया है। भारी धातुओं के विश्लेषण में भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण (कलकत्ता) का सहयोग सराहनीय है।

निर्देश

1. सैक्सवी, जे० डी०, **केम० जियाल०**, 1973, **12**, 241-288.

2. रशीद, एम० ए०, **केम० जियाल** 1974, **13**, 115-123.

3. सिंगर, पी० सी०, इनफ्लूएन्स आफ डिसाल्वड आरगेनिक्स आन दि डिस्ट्रीब्यूशन, ट्रान्सपोर्ट, एण्ड फेट आफ हैवी मेट्ल्स इन एक्वाटिक सिस्टम्स इन फेट आफ पाल्यूटैंट्स इन दी एयर एण्ड वाटर इनवायरमेंट, पार्ट I. सफेट, आई० एच० (इडि०), न्यूयार्क, 1977, 155-182.

4. जोहनसन, के०, द फन्डामेंटल केमिकल एण्ड फिजिकल कैरेक्टरिस्टिक्स ऑफ स्वेडिश लेक : हैवी मेटल कन्टेन्ट इन लेक सेडीमेंट फ्राम सम लेक्स ऑन द स्वेडिश वेस्ट कोस्ट एण्ड इट्स कनेक्शन विथ द एटमास्फेरिक सप्लाई, एब्स्ट्रैक्ट, एस० आई० एल० काग्र०, कॉपनहॉगेन, 1977, 133.

5. फास्ट्नर, यु० तथा विटमैन, जी० टी० डब्ल्यू०, (वर्द्धित द्वितीय संस्करण, 1983) : मेटल पाल्यूशन इन द एक्वाटिक इनवायरमेंट, स्प्रिंग-बरलाग, बरलिन हेडेलबर्ग, न्यूयार्क, 1979, 1-486.

6. वाक्ले, ए० तथा ब्लैक, डी० सी०, सॉयल साइन्स, 1934, 37, 29-38.

7. टुरेकियन, के० के० तथा वेडेपाल, के० एच०, बुल० जियाल० सोसा० अम०, 1961, 72, 175-192.

Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, Vol. 34. No. 3, 1991

कोल्चीसीन द्वारा कुसुम में स्वचतुर्गुणन का अध्ययन

बनारसी यादव, हृदय कुमार तथा प्रमोद कुमार चौबे
आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

[प्राप्त—मई 4, 1991]

सारांश

कुसुम की सात विभिन्न प्रजातियों के अंकुरों को स्वचतुर्गुणित उत्पन्न करने हेतु कोल्चीसीन के 0.1 प्रतिशत घोल के साथ 4, 8 एवं 12 घन्टे तक उसका उपचार किया गया। 8 घन्टे तक का उपचार स्वचतुर्गुणित पैदा करने में सर्वाधिक (5.16 प्रतिशत जीवित) प्रभावी रहा। बड़े बीज वाली प्रजातियाँ छोटे बीज की प्रजातियों की अपेक्षा कोल्चीसीन से ज्यादा प्रभावित पायी गयीं।

Abstract

Study of colchicine-induced autotetraploid in safflower. *By* B. Yadav, H. Kumar and P. K. Chaubey, Department of Genetics and Plant Breeding, Institute of Agricultural Sciences, Banaras Hindu University, Varanasi.

Seedlings of seven diverse cultivars of safflower (*Carthomus tinctorius* L.) were treated with 0.1% aqueous cochicine solution for 4, 8 and 12 hours to induce autotetraploid. Treatment of 8 hrs. was most effective and efficient in inducing autotetraploids (5.16% viable). Large seeded cultivars were more responsive to the colchicine than small seeded ones.

यद्यपि गुणसूत्र द्विगुणन एवं इसके कोशिकीय एवं कायिकी प्रभाव का अध्ययन बहुत सी फसलों पर हुआ, परन्तु कुसुम नामक तिलहनी फसल पर बहुत कम कार्य हुआ है। स्वचतुर्गुणित कुसुम पर जो कार्य पहले हुआ है वह बहुत ही प्रारम्भिक स्तर का है।[1, 2] पुनः स्वचतुर्गुणन की विधि बहुत प्रभावकारी नहीं रही है। कोल्चीसीन के अतिरिक्त विभिन्न भौतिक[3, 4, 5] एवं रासायनिक[6] विधियों द्वारा स्व-बहुगुणन का प्रयास किया गया, परन्तु परिणाम बहुत प्रभावकारी नहीं पाये गये। सम्भवतः इस

विषमता का निवारण ब्लेफेस्ली तथा एव्रे[7] एवं नैवेल[8] ने कोल्चीसीन के जलीय विलयन द्वारा 48 विभिन्न[5, 9] प्रजातियों में स्वबहुगणित उत्पन्न करने के महत्वपूर्ण कीर्तिमान स्थापित करके किया। उस समय से लेकर अब तक बहुत सी फसलों एवं प्रजातियों में कोल्चीसीन के जलीय घोल के प्रयोग से स्वचतुर्गुणित उत्पन्न किये गये।

कुसुम में सम्भवतः सैन्क एवं नाल्स[1] द्वारा सर्वप्रथम कोल्चीसीन के प्रयोग से स्वचतुर्गुणित उत्पन्न किया गया। उसके बाद पिल्लई[2] ने कुसुम की आई० सी० 11842 प्रजाति पर कोल्चीसीन के उपचार से इसी विभाग में स्वचतुर्गुणित पैदा किया। कोल्चीसीन विभिन्न प्रजातियों पर अलग-अलग समय तक सम्पर्क कराने पर भिन्न भौतिक एवं रासायनिक प्रभाव डालता है, जो प्रजाति के कोशिकीय कार्य की एवं बाह्य आकार के अध्ययन के लिए बहुत महत्व रखता है। कोल्चीसीन द्वारा उत्पादित स्वचतुर्गुणित में तेल की मात्रा एवं परीक्षण भार उसी प्रजाति के द्विगुणन से अधिक पाया गया है।[10,11] अतः उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए लेखकों ने कुसुम की विभिन्न प्रजातियों पर कोल्चीसीन द्वारा भिन्न सम्पर्क-समय का अध्ययन किया। प्रस्तुत शोध-पत्र में कुसुम की सात विभिन्न आकार एवं तेल (प्रतिशत) मात्रा की प्रजातियों का अध्ययन कोल्चीसीन के जलीय विलयन में तीन विभिन्न सम्पर्क समयों के लिए किया गया है।

सम्पर्क-समय एवं आकार-भिन्नता पर कोल्चीसीन के प्रभाव का अध्ययन

प्रयोगात्मक अध्ययन हेतु कुसुम की सात विभिन्न प्रजातियों (टी० 65, एच० यू० एस० 304, एन० एस० 668-1, बी० एल० वाई० 642, एच० यू० एस० 260, एच० यू० एस० 219 एवं एच० यू० एस० 29-ए) के अंकुरों का उपचार कोल्चीसीन के जलीय घोल द्वारा 4, 8 एवं 12 घन्टे तक किया गया। सभी प्रजातियाँ आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा उपलब्ध कराई गयीं। सभी सात प्रजातियों के बीज निर्जीवीकृत लकड़ी के बुरादे से भरे मिट्टी के बर्तनों में उगाये गये। दो बीज पत्तों वाले अंकुरों को कोल्चीसीन (बी० डी० एच० बम्बई) के 1 प्रतिशत जलीय विलयन से 4, 8 एवं 12 घन्टे तक रुई के फाहे से, जो कि दोनों बीजपत्तों के मध्य स्थित था, उपचारित किया गया। प्रयोग किया जाने वाला घोल प्रत्येक एक घन्टे बाद बदल दिया गया। उपचार के बाद सभी अंकुरों को एक घन्टे की अवधि तक आसुत जल से धोया गया एवं अच्छी प्रकार तैयार क्यारियों में रोप दिया गया।

स्वचतुर्गुणित पौधों को द्विगुणित पौधों की तुलना में विभिन्न बाह्य एवं कोशिकीय रचनाओं के आधार पर अलग किया गया। अन्त तक जीवित स्वचतुर्गुणित पौधों की संख्या का प्रतिशत कुल उपचारित पौधों की संख्या के सापेक्ष निकाला गया। पुनः सभी जीवित स्वचतुर्गुणित पौधों का प्रतिशत कुल प्राप्त चतुर्गुणित पौधों के सापेक्ष निकाला गया।

परिणाम तथा विवेचना

विभिन्न प्रजातियों पर अलग-अलग समय तक कोल्चीसीन घोल के उपचार से यह ज्ञात होता है

कि इसका प्रभाव प्रजाति विशिष्ट है (चित्र 1)[1]। विभिन्न सम्पर्क समयों में 8 घन्टे में सबसे ज्यादा स्वचतुर्गुणित पौधे प्राप्त हुए हैं जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिक समय तक घोल का सम्पर्क रहने पर पौधों में मृत्यु दर बढ़ जाती है।
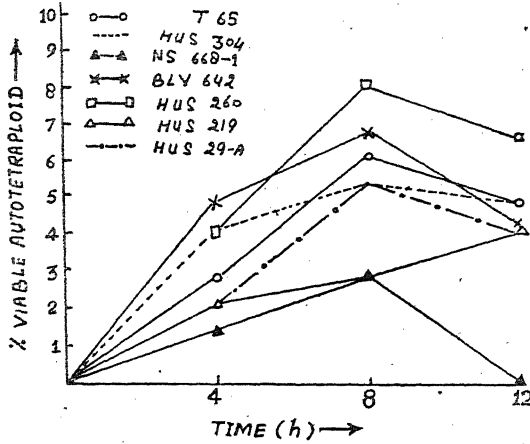
चित्र 1 : कुसुम की विभिन्न प्रजातियों पर कोल्चीसीन उपचार-अवधि का प्रभाव

उपचार समय का प्रभाव

यद्यपि विभिन्न प्रजातियों के साथ कोल्चीसीन घोल का सम्पर्क समय का अलग-अलग प्रभाव रहा है परन्तु 8 घन्टे का समय सबसे उपयुक्त पाया गया है। 8 घन्टे तक कुसुम के अंकुरों को कोल्चीसीन के जलीय घोल से उपचारित करने पर अधिकतम (5·16) जीवित स्वचतुर्गुणित पौधे प्राप्त किये गये (चित्र 2)। वास्तव में 12 घन्टे तक का उपचार समय अधिक पौधों की मृत्यु का कारण बनता है (सारणी 1)। प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि उचित समय एवं सान्द्रता अधिक संख्या में जीवित स्वचतुर्गुणित प्राप्त करने के लिए परम आवश्यक है।

बीज आकार का प्रभाव

प्रयोग से प्राप्त परिणाम यह दर्शाते हैं कि विभिन्न प्रजातियों के साथ कोल्चीसीन घोल का उपचार अलग-अलग परिणाम देता है। प्रजातियाँ एच० यू० एस० 260, बी० एल० वाई० 642 एवं एच० यू० एस० 2 कोल्चीसीन घोल के प्रति अधिक संवेदनशील पायी गयीं (सारणी 2)। इन प्रजातियों के बीज का आकार सामान्यतः अन्य प्रजातियों की अपेक्षा बड़ा था। इसी प्रकार के प्रयोग से पहले भी यह परिणाम प्राप्त हो चुका है कि बड़े बीज वाले पौधे कोल्चीसीन घोल से ज्यादा प्रभावित होते है।[12]
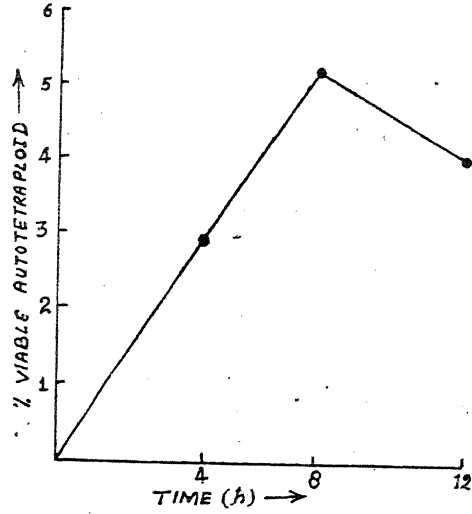
चित्र 2 : कुसुम पर कोल्चींसीन के सम्पर्क समय का प्रभाव

सारणी I

कोल्चीसीन जनित स्वचतुर्गुणितों की बारम्बारता : उपचार समय के आधार पर

उपचार समय (घन्टे)	पकने के समय जीवित पौधे (%)	स्वचतुर्गुणित प्राप्त उपचारित के सापेक्ष (%)	जीवित स्वचतुर्गुणित (%)	
			अंकुर उपचारित के सापेक्ष	कुल स्वचतुर्गुणित प्राप्त के सापेक्ष
4	62.02	3.71	2.96	79.03
8	49.98	6.66	5.16	76.15
12	40.65	6.27	4.00	60.14

सारणी 2

कोल्चीसीन जनित स्वचतुर्गुणितों की बारम्बारता : प्रति प्रजाति

प्रजाति	पकने के समय जीवित पौधे (%)	स्वचतुर्गुणित पौधे उपचारित अंकुरों के आधार पर (%)	जीवित स्वचतुर्गुणित (%)	
			अंकुर उपचारित के सापेक्ष	कुल स्वतुर्गुणित प्राप्त के सापेक्ष
टी० 65	43.57	5.33	4.47	83.23
एच० यू० एस० 304	58·27	6.03	4.67	78.11
एन० एस० 668-1	49.60	3.56	1.33	38.55
बी० एल० वाई० 642	50.43	7.10	5.13	735.48
एच० यू० एस० 260	54.60	7.73	6.20	79.41
एच० यू० एस० 219	51.93	4.00	2.90	72.34
एच० यू० एस० 29-ए	44.67	5.03	3.57	77.27

कृतज्ञता-ज्ञापन

लेखकों में बनारसी यादव छात्रवृत्ति प्रदान करने हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का आभारी है।

निर्देश

1. सैन्क, एस० सी० तथा नाल्स, पी० एफ०, **एन० जे० बाटनी** 1961, **51**, 1093-1102.
2. पिल्लई, आर० एस० एन०, **पी० एच० डी० थीसिस**, एग्रीकल्चर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी, 1978.
3. बेलिंग, जे० तथा ब्लैफेस्ली, ए० एफ०, **अमेर० नैट०** 1924, **58**, 60-70.
4. कास्टाफ, डी०, **एवरेस्ट० यू० वरब०**, 1935, **69**, 301-309.
5. ब्लैफेस्ली, ए० एफ०, **अमेर० जे०बाट०**, 1939, **26**, 163-172.
6. डरमेन, एच०, **प्रोसी० अमेर० सोसा० हार्ट० सा०** 1941, **38**, 141.
7. ब्लैफेस्ली, ए० एफ० तथा एवरे, ए० जी०, **साइन्स**, 1937, **86**, 108.
8. नैबेल, बी० आर०, **नेचर**, 1937, **140**, 1101.

9. इगस्ती, ओ० जे० तथा डस्टिन ए० पी०, कोल्चीसीन इन एग्री० मेडिसिन, बायोलोजी एण्ड केमेस्ट्री, ईवा स्टेट का० प्रेस० एमस० इवो ० 1955.

10. राव, डी० प्रसाद, एम० एस० सी० (ए० जी०) थीसिस, एग्री० बी० एच० यू० वाराणसी 1985.

11. यादव, बी० तथा कुमार, एच०, न्यूजलेटर, 1989,4,45-49.

12. मर्सी कुट्टी, वी०सी०, पीएच०डी० थीसिस (एग्रीकल्चर), बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी, 1983.

Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, Vol. 34, No. 3, 1991

फसलों पर प्रदूषक सीसे का प्रभाव

शिवगोपाल मिश्र तथा विनय कुमार
शीलाधर मृदा शोध संस्थान,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

[प्राप्त—मई 7, 1990]

सारांश

शीलाधर शोध प्रक्षेत्र में सीसे (लेड नाइट्रेट) की चार विभिन्न मात्रायें 0, 50, 100 एवं 200 ppm Pb डालकर मूँग तथा शलजम की फसलें उगाई गईं। यह पाया गया कि Pb की मात्रा बढ़ाने के साथ-साथ पौधों की वृद्धि तथा उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ा जबकि पौधों द्वारा शोषित सीसे की मात्रा बढ़ती गई। दलहनी फसलों तथा कन्दीय फसलों पर प्रदूषक सीसे का एकसा प्रभाव जान पड़ता है।

Abstr act

Effect of pollutant Pb on crops. *By* S. G. Misra and Vinay Kumar, Sheila Dhar Institute of Soil Science, University of Allahabad.

Mung and turnip crops were grown in plots treated with four different doses (0, 50, 100 and 200 ppm) of lead (Pb) as lead nitrate. It was observed that the growth of the plants and crop yields were adversely affected whereas the uptake of Pb by the plants increased with increasing doses of lead. It appears that leguminous crops and root crops are affected alike by the pollutant lead.

यातायात के साधनों में वृद्धि के परिणाम-स्वरूप शहरों तथा कस्बों में पेट्रोल तथा डीजल से चलने वाले वाहनों की संख्या बढ़ी है। पेट्रोल तथा डीजल में सीसा (Pb) नामक भारी धातु प्रचुर मात्रा में रहती है। अत: सड़कों पर चल रहे वाहनों के धुयें से शहरों एवं कस्बों के किनारों की भूमियों और उनमें उगने वाले पौधों में सीसे की लगातार वृद्धि होती रहती है, तथा उनपर अदृश्य हानिकारक प्रभाव पड़ता रहता है[1, 2]। शहरों में तीव्र औद्योगिक विस्तार होने से आटोमोबाइल, पेन्ट आदि उद्योगों का

सर्वाधिक विकास हुआ है, फलस्वरूप उनसे निकले अपशिष्ट (ठोस व द्रव) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से नालों या सिंचाई जल के द्वारा भूमि में लगातार पहुँचते रहते हैं। फलतः शहरों के आस-पास की भूमियाँ, जिनमें प्रायः सब्जियाँ अथवा पशुओं के लिये चारा उगाया जाता है, बुरी तरह से प्रदूषित हुई हैं। उद्योगों के अपशिष्ट एवं जल में प्राप्य प्रदूषक तत्वों, यथा Pb, Cd, Cr, Ni, Cu के कारण भूमि में इनकी मात्रा बढ़ने से उसकी उर्वरा शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।[3]

इसी दृष्टि से हमने सीसे की विभिन्न मात्राओं को भूमि में मिलाकर एक दलहनी तथा एक कन्द वाली फसल उगाने का प्रयोग किया और इन फसलों की वृद्धि, उपज तथा उनके द्वारा शोषित तत्वों की मात्रा ज्ञात की।

प्रयोगात्मक

प्रक्षेत्र की तैयारी : शीलाधर मृदा शोध संस्थान के फार्म पर यादृच्छिक विधि द्वारा चार उपचारों की तीन-तीन आवृत्तियों के लिए 36 प्लाटों को रबी फसल कटने के बाद तैयार किया गया। परीक्षण में प्लाटों की संख्या का आकार 1 मी^{2} रखा गया। फसलों की कटाई परिपक्व होने पर की गई। पौधों के रासायनिक विश्लेषण के लिए प्रत्येक प्लाट से अलग-अलग नमूने लिये गये।

उपचार : प्रक्षेत्र पर तैयार प्लाटों में 0, 50, 100 एवं 200 ppm लेड (लेड नाइट्रेट के रूप में) मिलाकर N,P,K, उर्वरकों की 50:50:50 किग्रा० मात्रा प्रति हैक्टर डाली गयी। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश को क्रमशः यूरिया, सुपरफ़ॉस्फेट तथा म्यूरेट आफ पोटाश के रूप में मृदा में मिलाया गया। वर्ष 1988 में 10 जुलाई को मूँग टाइप-1 की बुवाई 10 ग्रा० प्रति प्लाट की दर से की गई। रबी की ऋतु में 25 अक्टूबर को शलजम की फसल बोयी गई।

प्रक्षेत्र पर सिंचाई मूंग की फसल में वर्षा की स्थिति के अनुसार तथा शलजम में 10 दिनों के अन्तर पर हल्की सिंचाई की गयी।

फसल की बढ़वार तथा उपज : मूँग तथा शलजम के पौधों को ऊँचाई क्रमशः 60 तथा 45 दिनों बाद ज्ञात की गई। फसलों के पकने पर मूँग को 90 दिन के बाद तथा शलजम को भी 90 दिन बाद काट व उखाड़ लिया गया। मूँग के दानों तथा शलजम के कन्दों का भार ज्ञात किया गया।

लेड का शोषण : फसलों को काटने तथा उखाड़ने के बाद उनके विभिन्न भागों—पत्तियों या तना, दानों व जड़ों को अलग करके सुखाया गया। पौधे के विभिन्न भागों द्वारा जितना लेड अवशोषित हुआ उसका निश्चयन एटामिक एब्जार्प्सन स्पेक्ट्रोफोटोमीटर द्वारा ज्ञात किया गया। इसके लिये हमने बैरकपुर के केन्द्रीय मत्स्य प्रग्रहण शोध संस्थान का सहयोग प्राप्त किया।

प्राप्त परिणामों को रेखाचित्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

परिणाम तथा विवेचना

लेड का विभिन्न फसलों की वृद्धि तथा उपज पर प्रभाव

रेखाचित्र 1 और 2 का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मूँग तथा शलजम की फसलों में लेड की अनुपस्थिति में उनकी वृद्धि तथा उपज सर्वाधिक रही और ज्यों-ज्यों लेड की मात्रा में वृद्धि की गई इन पर विपरीत प्रभाव पड़ा। उदाहरणार्थ 50 ppm Pb से मूंग की वृद्धि में 13%, उपज में 10%, 100 ppm पर 25% तथा 15% की कमी आई।[4] शलजम में यह कमी 50 तथा 100 ppm Pb पर क्रमशः 15%, 7%, 41% व 23% देखी गयी। फसलों की वृद्धि में लेड की सर्वाधिक मात्रा (200 ppm) पर मूँग तथा शलजम में क्रमशः 42% तथा 72% की कमी देखी गई।[5] दोनों फसलों की उपज में भी लेड की उच्च मात्रा से क्रमशः 25% तथा 32% की कमी आई।
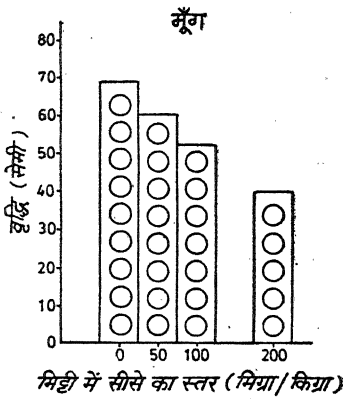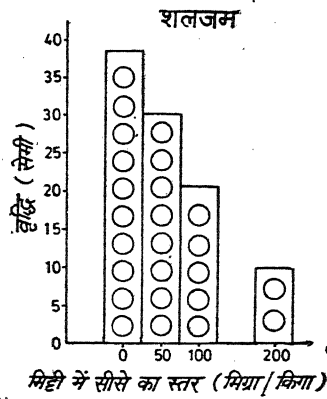
चित्र 1 चित्र 2

लेड का पौधों के विभिन्न भागों द्वारा शोषण

रेखाचित्र 3 और 4 को देखने पर यह ज्ञात होता है कि कन्ट्रोल की तुलना में मूँग के तनों व पत्ती में 50 ppm Pb स्तर पर 1.5 गुना, दानों में 1.2 गुना तथा जड़ों में 1.9 गुना Pb की मात्रा बढ़ी। 100 ppm Pb पर 1.8, 1.6 व 2.9 गुनी वृद्धि तनों, दानों व जड़ों में हुई। उपचार के सर्वोच्च स्तर (200 ppm Pb) पर शोषित लेड की मात्रा तनों में लगभग 5 गुनी; दानों में 3 गुनी तथा जड़ों में 5 गुनी थी। शलजम में पौधे के ऊपरी भाग में अवशोषित लेड की मात्रा 50 ppm Pb पर 1.4 गुनी तथा जड़ों में 1.6 गुनी थी। इसी तरह 100 ppm स्तर पर पौधे के ऊपरी तथा निचले भागों में लेड की मात्रा में 2.4 तथा 2.8 गुनी वृद्धि पायी गयी। सर्वाधिक उच्च उपचार स्तर (200 ppm Pb) पर तनें तथा जड़ में लेड की मात्रा 3.5 गुनी तक पायी गयी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सीसे की अधिक मात्रा पौधों की वृद्धि तथा उपज पर बुरा प्रभाव डालती है, जिसका कारण पौधों द्वारा लेड का अधिक अवशोषण है।[6]
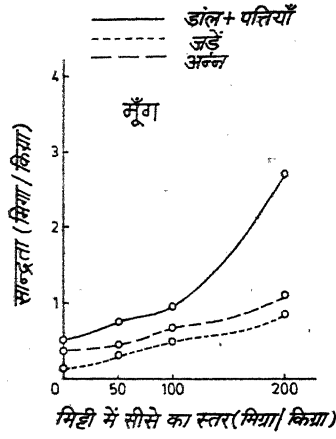
चित्र 3 चित्र 4
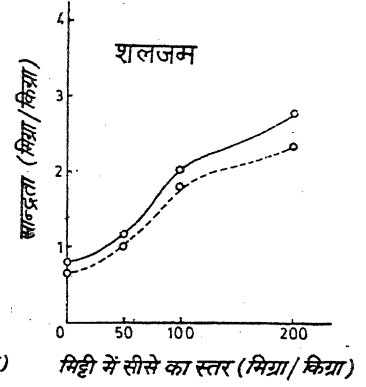
कन्दीय तरकारियों तथा दालों के उपभोक्ताओं को चाहिए कि ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ लेड की मात्रा भूमि में अधिक हो, पैदा की जाने वाली फसलों को खाने से पूर्व उनका विश्लेषण करा लें। प्रायः मल जल तथा अवमल से उपचारित मिट्टियों में उगाई गई फसलों का उपयोग करते समय सावधानी बरतनी होगी।

निर्देश

1. हैरीसन, आर० एम० इत्यादि, Environ. Sci. Tech. 1981, **15**, 1378-83.
2. वार्ड, एन० आदि, Environ. Sci. Tech., 1977, **11**, 917-21.
3. मिश्रा, एस० जी० तथा शुक्ला, पी० के०, **विज्ञान परिषद अनुसंधान पत्रिका**, 1990, 33, 227-33.
4. रवॉन्स, एस० इत्यादि, Plant & Soil, 1985, **74**, 87-94.
5. मिश्रा, एस० जी० तथा अन्य, **विज्ञान परिषद अनुसन्धान पत्रिका**, 1989, **32**, 9-14.
6. पाण्डेय, जी०, **डी-फिल० थीसिस**, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 1975.

Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, Vol. 34. No. 3, 1991

संयुग्मी फूरियर श्रेणी के नार्लुण्ड माध्यों के द्वारा फलनों का सन्निकटन

कुमारी प्रीति पीपलीवाल तथा अर्चना ब्योहर
गणित अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म० प्र०)

[प्राप्त—मई 13, 1990]

सारांश

प्रस्तुत प्रपत्र में संयुग्मी फूरियर श्रेणी के नार्लुण्ड माध्यों द्वारा फलन के सन्निकटन पर विचार किया गया है

Abstract

Approximation of functions by Norlund means of conjugate Fourier series. *By* Km. Priti Pipliwal and Archana Beohar, School of Studies in Maths Vikram University, Ujjain.

In this paper we establish a result on the approximation of functions by the Nörlund means of a conjugate Fourier series.

1. माना कि Σa_n आंशिक योगफलों के अनुक्रम $\{s_n\}$ समेत एक दी हुई अनन्त श्रेणी है। माना कि $\{p_n\}$ वास्तविक अथवा मिश्र अचरों का अनुक्रम हो तो

$$P_n = p_0 + p_1 + p_2 + p_3 + \dots + p_n \; (P_n \neq 0)$$

अनुक्रम रूपांतर

$$t_n = \frac{1}{P_n} \sum_{k=0}^{n} p_{n-k} S_k \; (P_n \neq 0)$$

$$= \frac{1}{P_n} \sum_{k=0}^{n} p_k S_{n-k} \tag{1.1}$$

से अनुक्रम $\{t_n\}$ परिभाषित है, जो कि अनुक्रम $\{p_n\}$ द्वारा उत्पन्न नार्लुण्ड माध्य है। यदि $t_n \to S$ जब $n \to \infty$ हम लिखते हैं

$$\sum_{n=0}^{\infty} a_n = S(N, p_n)$$

या

$$S_n \to S(N, p_n)$$

(1.1) द्वारा दर्शाये गये नार्लुण्ड माध्य की नियमितता के प्रतिबन्ध निम्नवत् हैं :

$$\lim_{n\to\infty} \frac{p_n}{P_n} = O \tag{1.2}$$

तथा

$$\sum_{k=0}^{n} |p_k| = O[|P_n|] \tag{1.3}$$

यदि $\{p_n\}$ वास्तविक तथा अनृण हो तो (1.3) की तुष्टि स्वत: हो जाती है और तब संकलन की विधि (N, p_n) की नियमितता के लिए (1.2) आवश्यक तथा पर्याप्त प्रतिबन्ध है। $p_n = 1/n+1$ होने की दशा में (N, p_n) विधि परिचित हार्मोनिक संकलनीयता $(N, 1/n+1)$ में समानीत हो जाती है।

2. माना कि $f(x)$ आवर्ती फलन है जिसका आवर्तकाल 2π है और अन्तराल $[-\pi, \pi]$ में लिबेग रूप में समाकलनीय है। इस फलन से सम्बद्ध फूरियर श्रेणी है—

$$f(x) \sim \frac{a_0}{2} + \sum_{n=1}^{\infty} (a_n \cos nx + bn \sin nx) \tag{2.1}$$

(2.1) की संयुग्मी श्रेणी (2.2) है—

$$\sum_{n=1}^{\infty} (b_n \cos nx - a_n \sin nx) \tag{2.2}$$

हम लिखेंगे

$$\psi(t) = \psi(x, t) = f(x+t) + f(x-t)$$

$$\psi(t) = \int_0^t |\psi(u)|\, du$$

$$P(1/t) = P_\tau$$

$$p(1/t) = p_\tau$$

जहाँ τ सूचित करता है $1/t$ के समाकल अंश को।

3. सन्निकटन की कोटि पर पाठक ने[4] निम्नलिखित प्रमेय सिद्ध किया है :

प्रमेय अ :

यदि
$$\psi(x, t)=\int_t^{\delta} |\psi(u)| \frac{P_{(1/u)}}{u}\, du=O(1) \tag{3.1}$$

जहाँ $\{p_n\}$ एक धनात्मक एवं अवर्धमान अनुक्रम है तब

$$\tilde{t}_n(x)-\tilde{f}(x)=O\left(\frac{1}{P_n}\right) \tag{3.2}$$

जहाँ
$$\tilde{f}(x)=\frac{1}{2\pi}\int_0^{\pi} \psi(t) \cot \tfrac{1}{2} t\, dt$$

x में समान रूप से लागू होता है ।

प्रस्तुत प्रपत्र में संयुग्मी फूरियर श्रेणी के नार्लुण्ड माध्यों के द्वारा एक फलन के सन्निकटन का अध्ययन किया गया है । संक्षेप में हम निम्नलिखित प्रमेय को सिद्ध करेंगे :

प्रमेय :

यदि
$$\psi(x. t)=\int_t^{\delta} |\psi(u)| \frac{P_{(1/u)}}{u}\, du=O\, [P_{(1/t)}]^{\alpha} \tag{3.3}$$

जहाँ $\{p_n\}$ एक धनात्मक तथा अवर्धमान अनुक्रम है तो

$$\tilde{t}_n(x)-\tilde{f}(x)=O\, [P_n]^{\alpha-1} \tag{3.4}$$

4. प्रमेय की सिद्धता के लिए हमें निम्नलिखित प्रमेयिकाओं की आवश्यकता होगी ।

प्रमेयिका 1

यदि $\{p_n\}$ एक अनृण तथा अवर्धमान अनुक्रम हो तब

$$\left| \sum_a^b P_k\, e^{i(n-k)t} \right| \leqslant P_T \tag{3.5}$$

प्रमेयिका 2

यदि $\{p_n\}$ अनृण तथा अवर्धमान अनुक्रम हो तो $0\leqslant t\leqslant\pi$ $0\leqslant a\leqslant b\leqslant\infty$ के लिए तथा किसी a एवं b के लिए

$$\left| \sum_{a}^{b} p_k \frac{\sin (n-k+\frac{1}{2})t}{\sin \frac{1}{2}t} \right| = O \left[\frac{P_{(1/t)}}{t} \right] \tag{3.6}$$

प्रमेयिका 3

यदि $\psi(t) \in L$ तब

$$\int_{\delta}^{\pi} \psi(t) \, \tilde{N}_n(t) \, dt = O\left(\frac{1}{P_n}\right) \tag{3.7}$$

प्रमेयिका 4

$O \leqslant t \leqslant \frac{1}{n}$ के लिए

$$\left| \tilde{N}_n(t) \right| \leqslant \frac{1}{2\pi P_n} \sum_{k=0}^{n} P_n \frac{\cos (n+\frac{1}{2})t}{\sin \frac{1}{2}t} = O(n) \tag{3.8}$$

प्रमेयिका 5

(3.3) तथा (3.4) से हम रखते हैं

$$\int_0^t |\psi(u)| \, du = O \left[t\{P_{(1/t)}\}^{\alpha-1} \right] \tag{3.9}$$

प्रमेयिका की उपपत्ति :

माना
$$\psi(t) = \int_t^{\delta} |\psi(u)| \frac{P_{(1/u)}}{u} \, du$$
$$= O[P_{(1/t)}]^{\alpha}$$

(3.3) से हम प्राप्त करते हैं—

$$\int_0^t |\psi(u)| \, P_{(1/u)} \, du = -\int_0^t u\psi'(u) \, du$$

खण्डशः समाकलन द्वारा हम लिखेंगे

$$= -\Big[u\,\psi(u)\Big]_0^t + \int_0^t \psi(u) \, du$$

$$= O\Big[u\{P_{(1/u)}\}^{\alpha}\Big]_0^t + O\left[\int_{1/t}^{\infty} \frac{\{P_{(v)}\}^{\alpha}}{v^2} \, dv\right]$$

$$=O[t\{P_{(1/t)}\}^{\alpha}]+O\left[\int_{1/t}^{\infty}\frac{\{P_{(u)}\}^{\alpha}}{v^{\alpha}}\frac{1}{v^{2-\alpha}}dv\right]$$

$$=O[t\{P_{(1/t)}\}^{\alpha}]+O\left[\frac{\{P_{(1/t)}\}^{\alpha}}{(1/t)^{\alpha}}\left\{v^{-2+\alpha+1}\right\}_{1/t}^{\infty}\right]$$

$$=O[t\{P_{(1/t)}\}^{\alpha}]+O\left[\frac{\{P_{(1/t)}\}^{\alpha}}{t^{-\alpha}}\frac{1}{t^{-1+\alpha}}\right]$$

$$=O[t\{P_{(1/t)}\}^{\alpha}]+O[t\{P_{(1/t)}\}^{\alpha}]$$

$$=[t\{P_{(1/t)}\}^{\alpha}]$$

तब

$$\int_0^t |\psi(u)|\,du=\int_0^t \frac{|\psi(u)|\,P_{(1/u)}}{P_{(1/u)}}\,du$$

$$=O\left[\frac{1}{P_{(1/t)}}\int_0^t |\psi(u)|\,P_{(1/u)}\,du\right]$$

$$=O\left[\frac{1}{P_{(1/t)}}\left(t\{P_{(1(t)}\}^{\alpha}\right)\right]$$

$$=O[t\{P_{(1/t)}\}^{\alpha-1}]$$

5. प्रमेय की उपपत्ति :

हम जानते हैं कि

$$S_n(\tilde{f},\ x)=\frac{1}{2\pi}\int_t^{\pi}\psi(t)\,\frac{\cos\frac{1}{2}t-\cos(n+\frac{1}{2})t}{\sin\frac{1}{2}t}\,dt$$

अत:

$$t_n(\tilde{f},\ x)-f(x)=\frac{1}{P_n}\sum_{k=0}^{n}p_{n-k}\,S_n(f,\ x)\frac{1}{2\pi}\int_0^{\pi}\psi(t)\cot\tfrac{1}{2}t\,dt$$

$$=\frac{1}{P_n}\sum_{k=0}^{n}p_{n-k}\frac{1}{2\pi}\int_0^{\pi}\psi(t)\,\frac{\cos\frac{1}{2}t-\cos(n+\frac{1}{2})t}{\sin t/2}\,dt$$

$$-\frac{1}{2\pi}\int_0^{\pi}\psi(t)\cot t/2\,dt$$

$$=\frac{1}{2\pi P_n}\sum_{k=0}^{n}p_k\int_0^{\pi}\psi(t)\,\frac{\cos(n+\frac{1}{2})t}{\sin t/2}\,dt$$

$$=\int_0^{\pi} \psi(t)\, \tilde{N}_n(t)\, dt$$

जहाँ

$$\tilde{N}_n(t)=\frac{1}{2\pi P_n} \sum_{k=0}^{n} pk\, \frac{\cos (n+\frac{1}{2})\, t}{\sin \frac{1}{2}t}\, dt \tag{4.1}$$

प्रमेय को सिद्ध करने के लिए हम दर्शायेंगे कि

$$\int_0^{\pi} \psi(t)\; \tilde{N}_n(t)\, dt=O[P_n]^{\alpha-1}$$

हम लेते हैं—

$$I=\int_0^{\pi} \psi(t)\; \tilde{N}_n(t)\, dt$$

$$=\left[\int_0^{1/n} +\int_{1/n}^{\delta} +\int_{\delta}^{\pi}\right] \psi(t)\; \tilde{N}_n(t)\, dt,\; 0<\delta<\pi$$

$$=I_1+I_2+I_3 \text{ माना} \tag{4.2}$$

अब

$$I_1=\int_0^{1/n} \psi(t)\; \tilde{N}_n(t)\, dt$$

$$=O\left[\int_0^{1/n} n\,.\, |\psi(t)|\, dt\right] \qquad \text{प्रमेयिका 4 से}$$

$$=O\left[\frac{1}{n}\,.\, n\left\{P_n\right\}^{\alpha-1}\right] \qquad \text{प्रमेयिका 5 से}$$

$$=O[P_n]^{\alpha-1} \tag{4.3}$$

I_2 के लिए हम जानते हैं कि

$$\tilde{N}_n(t)=\frac{1}{2\pi P_n}\, O\left|\sum_{k=0}^{n} p_n\, \frac{\cos (n+\frac{1}{2})t}{\sin \frac{1}{2}t}\right|$$

$$=\frac{1}{2\pi P_n}\; O\left[\frac{P_{(1/t)}}{t}\right] \qquad \text{प्रमेयिका 2 से}$$

$$=O\left[\frac{P_{(1/t)}}{t\, P_n}\right]$$

अत:

$$I_2=O\left(\int_{1/n}^{\delta}\frac{|\psi(u)|}{u}\cdot\frac{P_{(1/u)}}{P_n}du\right)$$

$$=O\left[\frac{1}{P_n}\cdot(P_n)^{\alpha}\right] \quad \text{(संकल्पना 3.3 द्वारा)}$$

$$=O[P_n]^{\alpha-1} \quad (4.4)$$

अन्त में

$$I_3=O\left[\int_{\delta}^{\pi}|\psi(t)|\ \tilde{N}_n(t)\ dt\right]$$

$$=O\left[\int_{\delta}^{\pi}|\psi(t)|\frac{P_{(1/t)}}{t\,P_n}\ dt\right]$$

$$O=\left(\frac{1}{P_n}\right) \text{ (प्रमेयिका 3 द्वारा)} \quad (4.5)$$

(4.3), (4.4) और (4.5) से

$$I=O[P_n]^{\alpha-1}$$

इस तरह प्रमेय सिद्ध हुई ।

कृतज्ञता-ज्ञापन

हम विक्रम विश्वविद्यालय के गणित प्राध्यन केन्द्र के उपाचार्य डॉ० बी० के व्यौहर के आभारी हैं जिन्होंने इस प्रपत्र के लेखन में हमारा मार्गदर्शन किया है ।

निर्देश

1. मकफैडेन, *Duke X Mathematical Jour*. 1942, **9**, 118-207.
2. फ्लैट, जे० एम०, *Q. J. Math*. 7, 87-95.
3. पोरवाल, जे० पी०, पी-एच० डी० थीसिस, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म० प्र०)
4. पाठक तथा गुप्ता, **विज्ञान परिषद अनुसंधान पत्रिका**, 1989, **32**, 1

Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, Vol. 34, No. 3, 1991

लुगदी एवं कागज औद्योगिक इकाइयों के बहिःस्राव जल का कृषि-सिंचाई हेतु प्रयोगात्मक अध्ययन

आर० एन० शुक्ला

प्रयुक्त रसायन विभाग, सम्राट अशोक टेक्नालॉजिकल इंस्टीट्यूट (डिग्री), विदिशा (म० प्र०)

तथा

एस० पी० शर्मा

रसायन विभाग, एस० एस० एल० जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, विदिशा (म० प्र०)

[प्राप्त—मार्च 1, 1991]

सारांश

लुगदी एवं कागज उद्योग के द्वारा निर्गमित वहिःस्राव जल को प्राथमिक अवसादन करने के बाद उसका उपयोग चना, गेहूँ एवं धान की फसलों की सिंचाई के लिए किया गया। प्रस्तुत शोध पत्र में 5 एकड़ भूमि में फसलों का उत्पादन, पानी की मात्रा, खाद एवं उर्वरक की मात्रा एवं फसल के पूर्व तथा बाद में मृदा पर होने वाले प्रभाव का प्रयोगात्मक विवरण दिया गया है।

प्रयोगात्मक रूप से यह निष्कर्ष निकला कि फसल एवं भूमि पर किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं पड़ा।

Abstract

Study on use of pulp and paper mill primary clarified effluent for irrigation. *By* R.N. Shukla, and S.P. Sharma, Samrat Ashok Technol ogical Institute, Vidisha (M.P.)

A study of large pulp and paper mill was undert aken with mill effluent after primary treatment for experimental grain, wheat and paddy farming. All detailed informations regarding yield, requirement of water, fertilizer, manual and soil test report after every crop are presented in this paper.

The yield of crop is comparatively better with no ontoward decrease in quality of the grain and soil.

औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले दूषित जल के द्वारा फैलने वाली बीमारियों से बचाव के लिए तात्कालिक एवं दीर्घकालीन योजनाओं का क्रियान्वयन अनिवार्य होता जा रहा है क्योंकि इसके बिना पर्यावरण सन्तुलन को बनाये रखने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। जब तक इस दूषित जल का पर्याप्त रूप से निर्धारित श्रेणी तक उचित तकनीकी द्वारा परिशोधन नहीं किया जायेगा, तब तक इसके द्वारा सतही जल स्रोतों तथा जल स्रोतों से जल प्राप्त करने वाले माध्यम के भी दूषित हो जाने का भय बना रहेगा। किन्तु दूसरी ओर इस जल से फसलों एवं वृक्षों को सींचना आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद सिद्ध होगा, एवं यह तथ्य और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि यह सिंचाई हेतु जल स्रोत सिद्ध होगा।

औद्योगिक इकाइयों में लुगदी एवं कागज निर्माण इकाई हेतु सर्वाधिक जल की खपत होती है अतः इस उद्योग से सबसे अधिक मात्रा में दूषित जल निर्गमित किया जाता है। उदाहरण के लिये एक टन कागज निर्माण में 250 से 350 घन लीटर जल दूषित हो जाता है। मोटे तौर पर इसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिदिन 100 टन कागज निर्माण करने में सक्षम कागज इकाई द्वारा लगभग 6 से 8 टन गैलन जल या 30,000 घन लीटर से लेकर 40,000 घन लीटर तक दूषित जल निर्गमित होता है। इतने जल द्वारा 1500 से लेकर 6000 एकड़ तक कृषि भूमि या वनरोपणी को अभिसिंचित किया जा सकता है। एक इकाई द्वारा अनुमानतः 11 MGD शुद्ध जल की खपत होती है तथा उपयोग के उपरान्त लगभग 9.5 MGD अशुद्ध जल निर्गमित किया जाता है। लुगदी तथा कागज निर्माण की प्रक्रिया में इस जल का विशुद्ध रूप में उपयोग विभिन्न मशीनों द्वारा किया जाता है।

प्रयोगात्मक

वहिःस्राव जल को शुद्धिकरण प्रक्रिया से गुजारने के पूर्व अत्यधिक दूषित जल को, जिसमें भारी रसायनों के साथ कार्बनिक पदार्थ (लिग्निन) सोडियोलिग्नेट के रूप में रहता है, पृथक करके पुनः रसायन प्राप्ति इकाई (रिकवरी यूनिट) में भेजा गया। इसके बाद बचे हुए आशुद्ध जल की मात्रा को एक एकल जलशोधक संयंत्र में एकत्रित किया गया एवं जल का विश्लेषण अन्तर्राष्ट्रीय मानक विधि (TAPI)[1] भारतीय मानक विधि[2] से किया गया (परिणाम सारणी 1 में दर्शाये गये हैं)। इसी परिणाम के अनुसार जल को विभिन्न चरणों में शुद्ध करने की प्रक्रियाओं से गुजारने के दौरान उसमें से ऊपर तैरने वाली अशुद्धियों तथा अन्य अशुद्धियों को अलग किया गया। फिर इसमें रहने वाली सभी अशुद्धियों को दूर करने के लिये इस जल को 44 मीटर व्यास वाले प्राथमिक निर्मलीकारक संयंत्र में भेजकर इसमें उपस्थित ठोस निलम्बित अशुद्धियों को दूर किया गया। प्राथमिक निर्मलीकारक टैंक में से बहकर आने वाले जल को लगभग 3½ घन्टे का समय लगता है। इस प्रकार प्राप्त जल का पुनः विश्लेषण मानक विधि से किया गया (परिणाम सारणी 1 में अंकित हैं)। यह जल शुद्धता की दृष्टि से पूर्णतः शुद्ध तो नहीं होता, किन्तु अंशतः शुद्ध हो जाता है। इस जल को जल में उपस्थित जीवों को जीवित बनाये रखने के लिये

सारणी 1

वहि: जल एवं निर्मलीकृत जल का विश्लेषण

विवरण	हाइड्रोजन पोटेंसी	निलम्बित ठोस	रंग प्लेटिनम इकाई	रासायनिक ऑक्सीजन	जीव रासायनिक ऑक्सीजन मांग	ताप
बहिर्वाह	8-9	450-600	1410	1250	560	40
प्राथमिक निर्मलीकृत	7.5-8	140-150	580	300 से 350	100-150	38
द्वितीयक निर्मलीकृत	7-7.5	50-75	180	250	50-80	30

सारणी 2

प्राथमिक निर्मलीकृत जल द्वारा सिंचित मृदा का प्रयोगात्मक विश्लेषण

क्रमांक संख्या	प्रदर्श लेने का दिनांक	मृदा का प्रकार	हाइड्रोजन पोटेंसी	विद्युच्चालकता	कार्बनिक कार्बन	उपलब्ध फास्फोरस	उपलब्ध पोटाश
*1.	12.6.85	दोमट	7.5	1.1 सामान्य	उच्च	1 से कम	2.48 मध्यम
2.	28.10.86	दोमट	8.0	0 8 सामान्य	उच्च	1 से कम	3.28 उच्च
3.	20.3.87	दोमट	8.0	0.8 सामान्य	मध्यम उच्च	1 से कम	4.16 उच्च
4.	18.10.87	दोमट	7.8	0.9 सामान्य	उच्च	1 से कम	4.61 उच्च
5.	20.5.88	दोमट	7.8	1.0 सामान्य	उच्च	1 से कम	3.25 उच्च

* प्रयोग शुरू के पूर्व परीक्षण.

सारणी 3

प्राथमिक निर्मलीकृत जल द्वारा सिंचित खेत में खाद्यान्न पैदावार का विवरण

खाद्यान्न	खाद्यान्न की किस्म	सिंचाइयों की संख्या	फसल बोने से काटने तक का समय (दिनों में)	खाद्यान्न का उत्पादन मी० टन में		खाद एवं उर्वरक की मात्रा			कीट नाशक दवाओं के छिड़काव
				अन्न	भूसा	देशी खाद बैलगाड़ी	डाई अमोनियम फास्फेट (कि० ग्रा०)	यूरिया (कि० ग्रा०)	(बार)
धान	बासमती	8	145	0.95	1.75	10	40-45	30-35	3
	सामान्य मसूरी	8	105	1,42	1,85	10	40-45	30-35	3
	पाकिस्तानी बासमती	8	140	1.01	1.15	10	40-45	30-35	3
गेहूँ	आर० आर०-21	4	100	2,68	3.4	5	35-45	40-45	1
	306	4	95	2.12	3.2	5	30-40	40-45	1
	308	4	105	2.42	3.2	5	30-40	40-45	1
धान	टाइप 1	2	90-95	2.69	2,6	3	30-35	20-25	2
	टाइप 3	2	90-95	2.42	2.4	3	30-35	20-25	2

इसमें पोषण पदार्थ (यूरिया एवं फास्फेट) डालने के बाद एक ऐसे टैंक में ले जाया गया, जिसमें सतत् वायु प्रवाह बनाये रखा गया था। यह टैंक "एरीटर टैंक" कहलाता है।

इस टैंक में प्राथमिक निर्मलीकृत जल को 8½ घन्टे तक रखा गया। चूंकि यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है, अतः 8½ घन्टे बाद पुनः नया जल आ जाता है। अब तक उसमें रहने वाला जल ऊपर बहकर द्वितीयक निर्मलीकारक टैंक मे चला जाता है।

प्राथमिक निर्मलीकारक एवं द्वितीयक निर्मलीकारक टैंक में निचली सतह पर एकत्र अवपंक (जिसमें ठोस अशुद्धियाँ सर्वाधिक मात्रा में होती है) को जालीदार यंत्र (फिल्टर) पर लेकर अवपंक को पृथक कर दिया गया। अतः द्वितीयक निर्मलीकृत जल पूर्ण रूप से शुद्ध होता है, जिसे किसी समीपवर्ती प्रवाहशील नदी, नाले में प्रवाहित कर दिया जाता है। प्रवाहशीलता के कारण बहिः जल बहुत तनु हो जाता है।

अध्ययन के लिये प्राथमिक निर्मलीकृत जल को प्राथमिक निर्मलीकारक टैंक से प्राप्त किया गया। फिर इसका उपयोग कृषि कार्य में सिंचाई के लिए किया गया। इसकी उपयोगिता परखने के लिए नैनीताल जिले में पन्तनगर के पास एक 5 एकड़ भूमि को चुना गया तथा भूमि का मृदा परीक्षण भारतीय मानक विधि[3] से किया गया (परिणाम सारणी 2 में अंकित हैं)। प्राथमिक निर्मलीकारक जल के द्वारा इस भूमि को सिंचित किया गया एवं उसमें समयानुसार चना, गेहूँ एवं धान की फसलें क्रमशः बोयी गयीं। बीज पंत नगर कृषि विश्व विद्यालय से प्रमाणित किये जाने के उपरान्त बोये गये। धान, गेहूँ एवं चने की विभिन्न किस्म की फसलें, जिसमें सामान्य मंसूरी, बासमती, पाकिस्तानी मंसूरी, आर० आर० 21, 306, 308, एवं टाईप 1 व टाईप 2 सम्मिलित हैं बोयी गयीं। प्रत्येक फसल की सिंचाई हेतु आवश्यक जल, खाद, तथा कीटनाशक का अनुपात एवं इससे प्राप्त अन्न की मात्रा सम्बन्धी पूर्ण विवरण सारणी 3 में दर्शाये गये हैं। प्रत्येक फसल की कटाई के बाद मृदा का परीक्षण किया गया, जिसका विवरण सारणी 2 में दिया गया है।

परिणाम तथा विवेचना

सारणी 3 से यह देखा जा सकता है कि धान, गेहूँ एवं चने की फसल जो कि प्राथमिक निर्मलीकृत जल द्वारा अभिसिंचित की गई उससे लगभग एक से दो टन प्रति एकड़ के बीच पैदावार प्राप्त हुई, जो कि सामान्य जल द्वारा सिंचित पैदावार के लगभग बराबर रही। इस तरह कागज उद्योग द्वारा निर्गमित प्राथमिक निर्मलीकृत दूषित जल का सदुपयोग किया गया।

प्रत्येक फसल की कटाई के उपरांत मृदा परीक्षण के प्रेक्षणों के आधार पर प्राप्त परिणाम बताते हैं कि मिट्टी के संघटन तथा उर्वरता पर इस दूषित जल का कोई कुप्रभाव नहीं पड़ा।

उपर्युक्त प्रक्रिया के द्वारा पर्यावरण प्रदूषण के खतरे से बचा जा सकेगा। साथ ही द्वितीयक निर्मलीकारक टैंक तथा एरीएटर पर पड़ने वाले कार्यभार को कम किया जा सकेगा जिससे विद्युत ऊर्जा की खपत कम होगी एवं आर्थिक लाभ भी होगा।

कृतज्ञता-ज्ञापन

लेखकगण इस शोध प्रपत्र के कार्य के लिए लुगदी एवं कागज संस्थान, नैनीताल तथा प्रो० एच० एन० सिलाकारी, प्राचार्य, एस० ए० टी० आई०, विदिशा के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए आभार प्रकट करते हैं जिनकी प्रेरणा से यह अध्ययन सम्भव हो पाया है।

निर्देश

1. टेक्निकल एसोसियेशन ऑफ पल्प एण्ड पेपर इंडस्ट्री न्यूयार्क ओफीसियल स्टैण्डर्ड्स-टी-1980.
2. भारतीय मानक IS 2408, Part (V), 1984.
3. भारतीय मानक IS 2720, Part 25, 26, 27, 1987.
4. शुक्ला, आर० एन०, तथा शुक्ला, मृदुल, वै० औ० अ० प० 1/43/89/743.

Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, Vol. 34, No. 3, 1991

भारतीय उपमहाद्वीप में ग्लूकोनाइट खनिज : एक भूवैज्ञानिक विवेचना

राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव
वाडिया हिमालय भूविज्ञान संस्थान , देहरादून

[प्राप्त—मार्च 4, 1991]

सारांश

ग्लूकोनाइट, K Mg (Fe, Al) $(SiO_3)_6 \cdot 3\ H_2O$, एक द्विअष्टफलकीय एवं सूक्ष्मक्रिस्टली अवसादी खनिज है। इसके संघटन, क्रिस्टल संरचना, प्राप्ति तथा जनन प्रक्रियाओं में उल्लेखनीय विविधता पायी जाती है। ग्लूकोनाइट की उपस्थिति सामान्यतः विश्व के सभी महाद्वीपों में प्रिकैम्ब्रियन से अभिनव काल तक के अवसादी शैलों में पाई गई है। परन्तु ऐन्टार्कटिक महाद्वीप इसका अपवाद है जहाँ से ग्लूकोनाइट की उपस्थिति के विषय में अभी तक कोई सूचना नहीं है। वैसे क्रिटेशियस तथा टरशियरी आयु के अवसादों में ग्लूकोनाइट का विश्वव्यापी गहन वितरण विशेष उल्लेखनीय है।

सामान्यतः ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति छिछले सागरीय पर्यावरण में विभिन्न सूक्ष्म भौतिक-रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा होती है परन्तु इसके विपरीत गम्भीर सागरीय, सरोवरी तथा जलोढ़ी पर्यावरण में जनित ग्लूकोनाइट के भी उदाहरण मिलते हैं। यह खनिज अवसादी शैलों में तत्रजनित, परिजनित या अन्यत्रजनित हो सकता है। आज भी ग्लूकोनाइट का जनन विश्व के विभिन्न महासागरों के महाद्वीपीय शेल्फों में हो रहा है।

ग्लूकोनाइट खनिज की सार्थकता दिन प्रति दिन विभिन्न भूवैज्ञानिक गवेषणाओं में बढ़ती ही जा रही है। भूविदों का विश्वास है कि ग्लूकोनाइट की उपस्थिति अवसादन-बेसिन के पुरापर्यावरण, अनुगभीरी पर्वतन तथा पुराभौगोलिक कथा को इंगित करने में पूर्णतः सक्षम है। ग्लूकोनाइट का उपयोग स्तृतीय सहसम्बन्धन तथा विषमविन्यास की उपस्थिति को परिलक्षित करने में भी किया गया है। पेट्रोलियम-भूविदों के लिए तो ग्लूकोनाइट वरदान है।

वैसे तो ग्लूकोनाइट के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पिछले दशकों में महत्वपूर्ण शोध गतिविधियाँ चलती रही हैं। परन्तु शोध का प्रमुख लक्ष्य ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति तथा ग्लूकोनाइटधारक

अवसादी शैलों का K/Ar, Rb/Sr तथा FT विधियों से आयु सम्बन्धी गवेषणाओं का क्षेत्र ही रहा है। इसके साथ ही कुछ वैज्ञानिकों का ध्यान ग्लूकोनाइट की औद्योगिक एवं व्यावहारिक उपयोगिता की ओर भी आकर्षित हुआ है। जल प्रदूषण की समस्या के समाधान, रेडियोधर्मी कचरा पदार्थों के निस्यंदन तथा पोटाश उर्वरक के रूप में ग्लूकोनाइट की उपयोगिता पर शोधकार्य हो रहे हैं तथा उत्साहवर्धक परिणाम भी प्राप्त हुए हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप ग्लूकोनाइट खनिज की भौगोलिक एवं अश्म-स्तृतीय वितरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सम्भवतः यहाँ विश्व के प्राचीनतम ग्लूकोनाइटधारक अवसाद पाखल; विन्ध्य, भीमा तथा निम्न हिमालय बेसिनों (प्रिकैम्ब्रियन) में विगोपित हैं। कैम्ब्रियन काल के ग्लूकोनाइट विन्ध्य तथा हिमालय के स्पिती तथा उपरि ताल क्वार्ट्जाइट शैलसमूहों से प्राप्त हुए हैं। परन्तु भारतीय उपमहाद्वीप के आरडोविशियन से परमियन काल तक के अवसादी शैलों में ग्लूकोनाइट की उपस्थिति के विषय में कोई सूचना प्रकाशित नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय उपमहाद्वीप में यह लम्बी अवधि ग्लूकोनाइट जनन के लिए उचित पर्यावरण उपलब्ध करने में समर्थ नहीं रही है तथा इस काल की पुराभौगोलिक परिस्थितियों का ग्लूकोनाइट की अनुपस्थिति में विशेष भूमिका भी रही है। कालान्तर में ग्लूकोनाइट की उपस्थिति ट्रायशिक काल में हिमालय के जान्सकार क्षेत्र के जांगला अवसादों में प्राप्त होती है। जुरैसिक काल में भी ग्लूकोनाइटधारी अवसादी संस्तरों का अभाव है।

भारतीय उपमहाद्वीप में ग्लूकोनाइट जनन के लिए क्रिटेशियस तथा इओसिन काल विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहे हैं। इस महाद्वीप के भूगतिक उद्भव में इस अवधि का अपना योगदान रहा है। भारतीय प्लेट का उत्तर दिशा में अपवहन तथा टेथिज सागर का विलोप एवं यूरेशियन प्लेट से संघटन, हिमालय का उद्भव तथा अन्य विवर्तनिक एवं पुराभौगोलिक परिवर्तन इस अवधि की विशेषताएँ रही हैं। ऐसे गतिशील पर्यावरण में क्रिटेशियम काल के ग्लूकोनाइटधारक अवसादी शैल भारतीय प्रायद्वीप के लमेटा (जबलपुर), भुज शैल समूह (कच्छ) तथा हिमालय के ग्यूमल बालुकाश्म (स्पिती), निदार ओफियोलाइट (लद्दाख), फिलश अवसाद (मल्ला जोहार कुमाऊँ), शैल चूनाश्म (गढ़वाल), पश्चिमी कोहट तथा साल्टरेंज के बालुकाश्म संस्तरों में विद्यमान है। इओसिन काल के ग्लूकोनाइटी अवसाद असम के सिलहट चूनाश्म, खासीजयन्तिया क्षेत्र के महादेक बालुकाश्म, दक्षिण-पश्चिमी कच्छ के शैल संस्तर तथा हिमालय में शिमला क्षेत्र के सुबाथू चूनाश्मों में मिलते हैं। अतः क्रिटेशियस-इओसीन काल में हिमालय की अश्म विवर्तनिकी की विवेचना में ग्लूकोनाइट की महत्वपूर्ण भूमिका पर शोध की विशिष्ट सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि लेखक ने ग्लूकोनाइट की उपस्थिति के आधार पर हिमालय में मध्य क्रिटेशियस (आस्ट्रीयन) पर्वतन क्रिया को स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है।

भारतीय उपमहाद्वीप में ओलिगोसीन तथा मायोसीन काल में भी ग्लूकोनाइट की उपस्थिति मिलती है। दक्षिण-पश्चिम कच्छ (ओलिगोसीन) तथा केरल में विगोपित निम्न मायोसीन काल का क्यूलोन चूनाश्म इसके उदाहरण हैं। अभिनव काल में ग्लूकोनाइट का जनन केरल के सागरीय शैल्फ क्षेत्र में होने के भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

पिछले एक दशक में भारतीय भूविदों का ध्यान विशेषत: ग्लूकोनाइट की आकृति-वर्णना, खनिजकी उत्पत्ति तथा आयु सम्बन्धी समस्याओं पर गया है। परन्तु राष्ट्रीय विकास हेतु ग्लूकोनाइट पर व्यावहारिक शोध आज की हमारी प्राथमिकता होनी चाहिये।

प्रस्तुत शोध-पत्र में लेखक ने भारतीय उपमहाद्वीप में ग्लूकोनाइट खनिज की बाह्य आकृति, रासायनिक विश्लेषण, उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न भूगतिक समस्याओं तथा तथ्यों की विवेचना प्रस्तुत की है। साथ ही ग्लूकोनाइट खनिज की भूवैज्ञानिक अध्ययनों में सार्थकता राष्ट्रीय विकास में ग्लूकोनाइट पर आधारित उद्योगों की सम्भावनाओं को भी प्रस्तुत किया गया है।

Abstract

Mineral glauconite in the Indian subcontinent : A geological interpretation. *By* R. A. K. Srivastava, Wadia Institute of Himalayan Geology, Dehra Dun.

Glauconite, K Mg (Fe, Al) $(SiO_3)_6$. 3 H_2O, is dioctahedral and microcrystalline sedimentary mineral. Much variations have been found in its composition, crystal structure, genesis and depositional environments. Glauconite is generally found in all the continents of the globe, preserved in the sediments ranging from Precambrian to Recent in age. Antarctica is an exception from where no report on the occurrence of glauconite is presently avialable. Special mention of the distribution of glauconite in the sediments of Cretaceous and Tertiary ages can be made from all over the world.

The mineral glauconite is generally formed by different sets of physico-chemical processes in shallow marine environment but besides this the reports of the genesis of glauconite from deep marine, lacustrinal and fluvial environments are also there. This mineral may be allogenic, perigenic and authegenic in origin in the sedimentary rocks. Even today the genesis of glauconite is continuing in the shelf zones of different oceans of the world.

The importance of glauconite is increasing day by day in different types of geological investigations. It is believed that the presence of glauconite in the sedimentary rocks is helpful in understanding the palaeoenvironment, burial, orogenic movments and palaeogeography of the depositional basin. Glauconite has also been used for stratigraphic correlations and in identifying the unconformities etc. Mineral glauconite has proved as a boon for the petroleum geologists.

Important researeh activities on the mineral glauconite is in progress from the last decade. On international level, main attention has been focussed on the origin and age determinations of glauconite bearing sediments by K/Ar, Rb/Sr and FT methods. Along with this, a few investigations have also been done on the industrial utilization

of glauconite. Encouraging results have been obtained in solving the water pollution, radioactive waste treatment and production of potash fertilizer with the help of this mineral.

The Indian subcontinent is very important from the viewpoint of the geographic and litho-stratigraphic distribution of glauconite. Perhaps the oldest glauconite-bearing sediments of the globe are exposed in the Pakhal, Vindhyan, Bhima and Lesser Himalayan basins (Precambrian) of India. The glauconites of Cambrian age are found in Vindhyan and Spiti and Upper Tal Quartzite formations of Himalaya. The sedimentary sequences of Ordovician to Permian times do not contain glauconite in the Indian subcontinent. . It seems that the environment and the palaeogeographic conditions were not favourable for glauconite genesis during these times. The glauconite is reported from the Jangla sediments of Zanskar Himalaya which is assigned a Triassic age. The glauconite-bearing sediments are also rare in the Jurassic sediments of this subcontinent.

The Cretaceous and Eocene are the most important periods for the genesis of glauconite in the India subcontinent.

The Indian geologists have largely concentrated, during the last decades on the morphology, genesis and problems related with age determinations of the mineral glauconite. Investigations on the applied aspects and industrial utility of glauconite have not been given much attention.

'ग्लूकोनाइट' शब्द एक विशेष अवसादी खनिज स्पीशीज का परिचायक है। इस द्विअष्टफलकीय, सूक्ष्मक्रिस्टली, जलयोजित लौहधनी अभ्रकीय मृत्तिका खनिज के रासायनिक सूत्र को $K\ Mg\ (Fe\ Al)\ (SiO_3)_6 . 3\ H_2O$ के रूप लिखा जा सकता है। इस खनिज के संघटन, क्रिस्टल संरचना, प्राप्ति तथा जनन प्रक्रियाओं में उल्लेखनीय विविधता पायी जाती है। सामान्यतः यह खनिज अप्रसारी 10 Å परतों एवं प्रसारी मोन्टमोरिलोनाइटी परतों के अनियमित अन्तःस्तरण को परिलक्षित करता है। ऐसी स्थिति में प्रसारी परतों की मात्रा 50 प्रतिशत से अधिक भी हो सकती है परन्तु "ग्लूकोनाइट" शब्द उन्हीं खनिजों के लिए प्रयोग में लाया जाता है जिनमें प्रसारी परतों की मात्रा 10 प्रतिशत से भी कम हो। इस प्रकार प्रसारी परतों की मात्रा में प्राप्त होने वाली विसंगतियाँ ग्लूकोनाइट खनिज के विभिन्न गुणों यथा रासायनिक संघटन (विशेषतः पोटैशियम की मात्रा), तापीय गुण, धनायन विनिमय धारिता, रंग, अपवर्तनांक तथा आपेक्षिक घनत्व इत्यादि की व्याख्या करने में उपयोगी सिद्ध होती है।[14]

ऐसा विश्वास किया जाता है कि ग्लूकोनाइट खनिज का जनन एक निम्न लैटिस चार्ज वाले निम्नीकृत परत सिलिकेट लैटिस द्वारा पोटैशियम तथा लौह के प्रगामी अवशोषण तथा अन्य सिलिकेट लैटिस किस्मों के विलोपन की प्रक्रिया द्वारा होता है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया एक उचित पर्यावरण में सम्पन्न होती है जिसमें सबसे महत्वपूर्ण रेडाक्स विभव है। ऐसी स्थिति में सागरीय जीवों द्वारा उत्प्रेरक क्रिया

उतनी आवश्यक नहीं परन्तु क्षयमान कार्बनिक पदार्थ तथा फोरामेनीफेरा के रिक्त चोले ग्लूकोनाइट जनन के लिए उचित पर्यावरण को उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होते हैं। ग्लूकोनाइटीभवन की क्रिया द्रुतगति के अवसादन से अवरोधित होती है और यही कारण है कि मातृशैल की प्रकृति तथा ग्लूकोनाइट खनिज की किस्मों में एक सहज सम्बन्ध प्राप्त होता है।

ग्लूकोनाइट खनिज पर पिछले एक-दो दशकों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण शोध कार्य हुए हैं। ओडिन तथा मैटर[2] द्वारा ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति के सम्बन्ध में किये गये शोध से ज्ञात हुआ है कि यह खनिज एक श्रृंखला का निर्माण करता है जिसके अन्तिम छोर के सदस्यों के रूप में ग्लूकोनाइट सेमेक्टाइट तथा ग्लूकोनाइट माइका प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार ग्लूकोनाइट के जनक पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रकार के कण हो सकते हैं जिनकी श्रेणी फोरामेनीफेरा के रिक्त चोलों से शैलखण्डों तक फैली है। इन्हीं वैज्ञानिकों के मतानुसार ग्लूकोनाइटीभवन की क्रिया का नियन्त्रण अतिविशिष्ट सूक्ष्म पर्यावरणीय परिस्थितियों तथा खुले सागरीय जल में आयन-विनिमय प्रक्रिया के सम्मिलित प्रभाव द्वारा होता है। सामान्यतः ग्लूकोनाइट का निर्माण लौह तथा पोटैशियम की प्रचुर उपलब्धि पर निर्भर करता है। इसी सन्दर्भ में कैम्पर[4] के मतानुसार "सागरीय अतिक्रमण" तथा "अवसादन की धीमी दर" ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति के लिए आवश्यक नहीं है। उनके अनुसार यह विचार मात्र भ्रम है जो भूविदों में वर्षों से व्याप्त है। कैम्पर के अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति के लिए पेलैजिक स्थितियों का होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि सिलिकामय जीव, ग्लूको-नाइट तथा फास्फोराइट एक दूसरे से अनुवांशिक रूप से सम्बन्धित हैं एवं ग्लूकोनाइट, फास्फोराइट तथा मोन्टमोरिलोनाइट की उत्पत्ति के मध्य निकटवर्ती सम्बन्ध है। ओरकेनीवोन्डर (1982) के अनुसार भी अवसादन की धीमी दर, कण साइज तथा कैल्सियमी अंश ग्लूकोनाइट जनन में कोई विशेष महत्व नहीं रखते। बर्गमडसन (1983) के अनुसार उच्च ऐल्यूमिना धारक (10 प्रतिशत से अधिक) ग्लूकोनाइट का जनन ठण्डे जल में होता है।

इसके अतिरिक्त ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मैंकोंचो इत्यादि[18] द्वारा मेसाबार गवेषणा अत्यन्त महत्व की है। इन वैज्ञानिकों के मतानुसार ग्लूकोनाइट जनन की प्रक्रिया एक निम्नीकृत फाइलो-सिलिकेट संरचना से प्रारम्भ होती है। जनक पदार्थ एक तत्रजात या एक अपरदी खनिज हो सकता है जो सागरीय जैविक क्रियाओं द्वारा अंशतः निम्नीकृत हुआ हो। इस संरचना में अत्यधिक चार्ज होता है जो पोटैशियम, सोडियम, कैल्सियम एवं विशेषतः मैग्नीशियम धनायन द्वारा अस्थाई रूप से निष्प्रभावित किया जाता है। इस संरचना में निष्प्रभावित धनायन को विस्थापित करके फेरस आयन में रूप में लौह का पदार्पण होता है। तदन्तर कुछ अंश तक यह अष्टफलकीय फेरिक आयन में आक्सीकृत हो जाता है। चूंकि फेरस आयन की सान्द्रता बहुत कम होती है इस कारण इस संरचना में आवश्यक आयन का प्रवेश तब तक चालू रहता है जब तक कि सम्पूर्ण व्यवस्था सन्तुलन की स्थिति को प्राप्त नहीं हो जाती। ऐसी स्थिति में पूरा का पूरा फेरस आयन आक्सीकृत नहीं हो पाता। अतः ग्लूकोनाइटीभवन की प्रक्रिया समुचित परिवर्तन की स्थिति में अस्थाई या स्थाई रूप से रुक जाती है तथा लौह का प्रवेश अल्प से अल्पतम होता जाता है या फिर अष्टफलक के सभी स्थान पूर्णतः भर जाते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति छिछले सागरीय पर्यावरण में विभिन्न सूक्ष्म भौतिक-रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा होती है परन्तु इसके विपरीत गहरे सागरीय, सरोवरी तथा जलोढ़ी पर्यावरण में जनित ग्लूकोनाइट के उदाहरण भी मिलते हैं। यह खनिज अवसादी शैलों में तत्र-जनित, परिजनित या अन्यत्र हो सकता है। आज भी ग्लूकोनाइट का जनन विश्व के विभिन्न महासागरों के महाद्वीपीय शेल्फों में हो रहा है।

ग्लूकोनाइट की उपस्थिति सामान्यत: विश्व के सभी महाद्वीपों में प्रिकैम्ब्रियन से अभिनव काल तक के अवसादी शैलों में पाई गई है परन्तु ऐन्टार्टिक महाद्वीप इसका अपवाद है जहाँ से ग्लूकोनाइट की उपस्थिति के विषय में अभी कोई सूचना नहीं है। वैसे क्रिटेशियस तथा टरशियरी आयु के अवसादों में ग्लूकोनाइट का विश्वव्यापी गहन वितरण उल्लेखनीय है।

ग्लूकोनाइट खनिज की सार्थकता दिन प्रतिदिन विभिन्न भूवैज्ञानिक गवेषणाओं में बढ़ती ही जा रही है। भूविदों का विश्वास है कि ग्लूकोनाइट की उपस्थिति अवसादन बेसिन के पुरापर्यावरण, अनुगभीरी, पर्वतन तथा पुराभौगोलिक कथा को इंगित करने में पूर्णत: सक्षम है। ग्लूकोनाइट का उपयोग स्तृतीय सहसम्बन्धन[11], [20] तथा विषमविन्यास की उपस्थिति[8] [11] [23] को परिलक्षित करने में भी किया गया है। पेट्रोलियम-भूविदों के लिए तो ग्लूकोनाइट वरदान सदृश्य है [18]।

वैसे तो ग्लूकोनाइट के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पिछले दशकों में महत्वपूर्ण शोधगति-विधियाँ चलती रही हैं परन्तु शोध का प्रमुख लक्ष्य ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति तथा ग्लूकोनाइटधारक अवसादी शैलों का K/Ar, Rb/Sr तथा FT विधियों से आयु सम्बन्धी गवेषणाओं का क्षेत्र ही रहा है[1, 5, 3, 16, 36], K/Ar विधि के लिए[6, 34, 35] Rb/Sr विधि के लिए तथा[17] FT विधि के लिए]।

इसके अतिरिक्त कुछ वैज्ञानिकों का ध्यान ग्लूकोनाइट की औद्योगिक एवं व्यावहारिक उपयोगिता की ओर भी आकर्षित हुआ है। जल प्रदूषण की समस्या के समाधान[31], रेडियोधर्मी कचरा पदार्थों के निस्यंदन[32] तथा पोटाश उर्वरक के रूप में ग्लूकोनाइट की उपयोगिता पर शोधकार्य हो रहे हैं तथा उत्साहवर्धक परिणाम भी प्राप्त हुए हैं। वैसे तो ग्लूकोनाइट खनिज-निक्षेप आज समुचित आर्थिक महत्व प्राप्त नहीं कर सके हैं परन्तु ग्लूकोनाइटधारी शैलों से निर्मित मिट्टी में अत्यधिक उर्वराशक्ति पायी गयी है।

जहाँ तक भारतीय उपमहाद्वीप में ग्लूकोनाइट खनिज की भौगोलिक एवं अश्म-स्तृतीय वितरण (चित्र 1) तथा शोध सम्भावनाओं का प्रश्न है, वह भूवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अति महत्वपूर्ण है। संभवत: यहाँ विश्व के प्राचीनतम ग्लूलोनाइटधारक अवसाद पाखल, विन्ध्य, भीमा तथा निम्न हिमालय बेसिनों (प्रिकैम्ब्रियन) में विगोपित हैं। कैम्ब्रियन काल के ग्लूकोनाइट हिमालय के स्पिती तथा उपरि ताल क्वार्टजाइट शैलसमूहों से प्राप्त हुए हैं। परन्तु भारतीय उपमहाद्वीप के आरडोविशियन से परमियन काल तक के अवसादी शैलों में ग्लूकोनाइट की उपस्थिति के विषय में अभी तक कोई सूचना प्रकाशित नहीं है। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है जिस पर शोध की प्रचुर सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। कालान्तर में ग्लूको-

नाइट की उपस्थिति ट्रायसिक काल में हिमालय के जान्सकार क्षेत्र के जांगला अवसादों में प्राप्त होती है। जुरैसिक काल में ग्लूकोनाइटधारी अवसादी संस्तरों का अभाव है।

भारतीय उपमहाद्वीप में ग्लूकोनाइट जनन के लिए क्रिटेशियस तथा इओसीन काल विशेष रूप मे महत्वपूर्ण रहे हैं। इस महाद्वीप के भूगतिक उद्भव में इस अवधि का अपना विशेष स्थान रहा है। भारतीय प्लेट का उत्तर दिशा में अपवहन तथा टेथिज सागर का विलोप एवं यूरेशियन प्लेट से संघट्टन, हिमालय का उद्भव तथा अन्य विवर्तनिक एवं पुराभौगोलिक परिवर्तन इस अवधि की विशेषताएँ रही हैं। ऐसे गतिशील पर्यावरण में क्रिटेशियस काल के ग्लूकोनाइटधारक अवसादी शैल भारतीय प्रायद्वीप के लमेटा (जबलपुर) एवं भुज शैलसमूह (कच्छ) तथा हिमालय के ग्यूमल बालुकाश्म (स्पिती) ट्रांस-समदो-निदार ओफियोलाइट (लद्दाख), फिलरा अवसाद (मल्लाजोहार, कुमाऊँ), शैल चूनाश्म (गढ़वाल), पश्चिमी कोहट तथा साल्ट रेन्ज के बालुकाश्म संस्तरों में विद्यमान हैं। इओसीन काल के ग्लूकोनाइटी अवसाद असम के सिलहट चूनाश्म, खासी-जयन्तिया क्षेत्र के महादेक बालुकाश्म, दक्षिण-पश्चिमी कच्छ के सेल संस्तर तथा हिमालय में शिमला क्षेत्र के सुबाथू चूनाश्मों में मिलते हैं। अतः क्रिटेशियस-इयोसीन काल में हिमालय की अश्म विवर्तनिकी की विवेचना में ग्लूकोनाइट की भूमिका पर शोध की विशिष्ट सम्भावनाएँ विद्यमान हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप में ओलिगोसीन तथा मायोसीन काल में भी ग्लूकोनाइट की उपस्थिति मिलती है। दक्षिण-पश्चिमी कच्छ का गौर नाला सेक्शन (ओलिगोसीन) तथा केरल में विगोपित निम्न मायोसीन काल का क्यूलोन चूनाश्म इसके उदाहरण हैं। अभिनव काल में ग्लूकोनाइट का जनन केरल के सागरीय शेल्फ क्षेत्र में होने के भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

पिछले एक दशक में भारतीय भूविदों का ध्यान ग्लूकोनाइट की वाह्य आकृति, जनक पदार्थ तथा उत्पत्ति पर्यावरण की ओर अधिक रहा है परन्तु शोध के कई एक महत्वपूर्ण आयाम अभी तक भी अछूते ही हैं।

ग्लूकोनाइट की वाह्य आकृति

ग्लूकोनाइट खनिज की वाह्य आकृति तथा इसकी किस्मों पर प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस खनिज की वाह्य आकृति इसकी उत्पत्ति में सहायक विभिन्न भौतिक-रासायनिक प्रक्रियाओं तथा शैलीभवन की विभिन्न अवस्थाओं को समझने में पूर्णतः सहायक है। अतः ग्लूकोनाइट की वाह्य आकृति का अध्ययन करने के लिए शैलकीय सूक्ष्मदर्शी के अतिरिक्त क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी का प्रयोग अत्यन्त अपेक्षित है। इसके साथ ही विभिन्न प्रकार के शैल प्रतिदर्शों से ग्लूकोनाइट खनिज को पृथक करने की विधियों पर भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए ग्लूकोनाइट के आपेक्षिक घनत्व तथा चुम्बकीय प्रवृत्तियों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

ग्लूकोनाइट खनिज की अन्तःसंरचना

ग्लूकोनाइट खनिज की विभिन्न वाह्य आकृतियों के साथ विभिन्न प्रकार की अभिलक्षणी अन्तः

संरचनाएँ उपस्थित हो सकती हैं जिनका सीधा सम्बन्ध इसकी उत्पत्ति तथा खनिजकी (संगटन) से हो सकता है। अतः ग्लूकोनाइट की वाह्य आकृति के साथ-साथ इसकी अन्तः संरचना (गठन) को भी समझना आवश्यक है। इस दिशा में शैलकीय सूक्ष्मदर्शी के अतिरिक्त क्रमवीक्षण इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

ग्लूकोनाइट की सही पहचान

अवसादी शैलों में प्राप्त होने वाला प्रत्येक हरे रंग का खनिज ग्लूकोनाइट ही नहीं होता। ग्लूकोनाइट की उससे मिलते-जुलते खनिजों से पहचान करना भी कभी-कभी एक समस्या बन जाती है। इस स्थान पर इस तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि ग्लूकोनाइट का प्रमुख अभिलक्षणी प्रकाशीय गुण इसका अपवर्तनांक है जो कि सामान्यतः 1.56 से 1.64 तक ही होता है। यह अपवर्तनांक ग्लूकोनाइट खनिज के रासायनिक तथा खनिजीय गुणों, विशेषतः Fe_2O_3 की प्रतिशत मात्रा तथा खनिज में विद्यमान प्रसारी परतों की प्रतिशत मात्रा, पर निर्भर करता है। अतः ग्लूकोनाइट खनिज की सही पहचान के लिए उसके अन्य प्रकाशीय गुणों के साथ-साथ अपवर्तनांक को अवश्य ही ज्ञात करना चाहिये। इसके अतिरिक्त इसकी पुष्टि एक्स-किरण विश्लेषण अवरक्त अध्ययन तथा विभेदक तापीय विश्लेषण द्वारा प्राप्त आँकड़ों से भी कर लेना चाहिए। इस प्रकार किये गये इन विश्लेषणों के माध्यम से ग्लूकोनाइट खनिज की क्रिस्टलीय संरचना को समझने में सहायता मिलेगी। एक्स-किरण विश्लेषण से प्राप्त आँकड़े ग्लूकोनाइट को व्यवस्थित, अव्यवस्थित, मिश्रित या अन्तस्तरीय प्रकृति तथा प्रसारी परतों की प्रतिशत मात्रा को भी समझने में सहायक रहते हैं। इस विषय पर प्रचुर साहित्य उपलब्ध है[14]।

ग्लूकोनाइट का रासायनिक विश्लेषण

ग्लूकोनाइट खनिज की प्रौढ़ता, उत्पत्ति पर्यावरण तथा इसके जनन में जैविक प्रक्रियाओं द्वारा किये गये योगदान को समझने में ग्लूकोनाइट का रासायनिक संघटन विशेष लाभदायक सिद्ध हो सकता है। इस खनिज में विद्यमान विषैले तथा अविषैले तत्वों की विद्यमानता के आधार पर जैविक योगदान को समझना सरल हो सकता है। इसके अतिरिक्त टेलर तथा वाइली[9] के मतानुसार असागरीय उत्पत्ति के ग्लूकोनाइट खनिज में Mg की मात्रा अधिक तथा Al की मात्रा सागरीय उत्पत्ति के ग्लूकोनाइट की तुलना में अत्यल्प होती है। इन रासायनिक विश्लेषण के आँकड़ों की सहायता से ग्लूकोनाइट में विद्यमान पोटैशियम तथा लैटिस में विद्यमान प्रसारी परतों के बीच के सम्बन्ध को भी समझने में सहायता मिलेगी। इसलिए ग्लूकोनइट के रासायनिक विश्लेषण हेतु एक्स आर एफ, माइक्रोप्रोव, मेसावार तथा आई सी पी जैसी तकनीकों का प्रयोग अपेक्षित है।

ग्लूकोनाइट का जनक पदार्थ

ग्लूकोनाइट खनिज का जनन उचित भौतिक-रासायनिक पर्यावरण में भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों द्वारा हो सकता है जिनकी श्रेणी फोरामेनीफेरा के रिक्त चोलों से शैल खण्डों तक फैली है। खुले सागरीय जल में आयन-विनिमय प्रक्रिया तथा अतिविशिष्ट सूक्ष्म पर्यावरणीय परिस्थितियों में लौह तथा

पोटैशियम की प्रचुर उपलब्धि इन पदार्थों द्वारा ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति में सहायक होते हैं। अतः ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति को समझने के लिए इन जनक पदार्थों की पहचान भी आवश्यक है जिसके लिए हमेशा विशेष ध्यान रखना अपेक्षित है।

ग्लूकोनाइटधारी शैल

ग्लूकोनाइट खनिज के अतिरिक्त यह जिस शैल संस्तर में मिलता है उसका भी विस्तार में अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है। ग्लूकोनाइटधारी अवसादी शैलों में विद्यमान विभिन्न अभिलक्षणी अवसादी संरचनाओं, जीवाश्म तथा अन्य कार्बनिक अवशेषों, अपरदी तथा तत्रजनित घटकों की व्याख्या तथा शैलीभवन की विभिन्न प्रक्रियाओं के अतिरिक्त अवसादन बेसिन के विन्यास, गहराई, ताप, लवणता आक्सीजन की उपलब्धि, तली अवसादों में विद्यमान कार्बनिक पदार्थ, प्रक्षोभ, जनक पदार्थ तथा अवसादन दर इत्यादि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण तथ्य हैं जिन पर भी प्रकाश डालना अति आवश्यक है क्योंकि ये तथ्य सीधे ग्लूकोनाइट की उत्पत्ति से सम्बन्धित हैं।

ग्लूकोनाइटधारी अवसादी शैलों की शैलीभवन अवस्थाओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता लगती है क्योंकि शैलीभवन के प्रभाव के कारण प्राचीन (प्रिकैम्ब्रियन) ग्लूकोनाइट के गठन तथा खनिज संरचना में पुन संतुलन, तत्वों के वितरण में परिवर्तन तथा स्थूल रूप से सम्पूर्ण रासायनिक अभिलक्षणों में परिवर्तन होना कोई अचरज की बात नहीं है। अतः प्राचीन ग्लूकोनाइटधारी अवसादों या ग्लूकोनाइट से सम्बन्धित किसी प्रकार के महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व इन प्रभावों की प्रकृति तथा परिवर्तनों पर ध्यान देना अपेक्षित है।

ग्लूकोनाइट का रासायनिक अपरदन

रासायनिक अपरदन की प्रक्रियाओं द्वारा ग्लूकोनाइट का हेमाटाइट में परिवर्तन सम्भव है[31]। इन भूविदों ने क्षेत्रीय तथा प्रयोगात्मक अध्ययनों से यह सिद्ध किया है कि ग्लूकोनाइट-चेमोसाइट (मैघीमाइट)-हेमाटाइट परिवर्तन प्रक्रिया प्रकृति में हो रही है। अतः कुछ एक अवसादी लौह अयस्कों के निर्माण में इस प्रक्रिया की भूमिका पर शोध की प्रबल सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। इसी प्रकार ग्लूकोनाइट की प्रकृति में रासायनिक अपरदन की प्रक्रियाओं का अध्ययन भी इस खनिज के मूल अभिलक्षणों तथा अन्य उपयोगों को समझने में सहायक हो सकते हैं।

ग्लूकोनाइट का अवसादी शैलों की आयु से सम्बन्धित प्रयोग

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ग्लूकोनाइट खनिज का प्रयोग अवसादी शैलों की आयु को ज्ञात करने में किया जा रहा है। इसके लिए K-Ar, Rb-Sr तथा FT विधियों का प्रयोग किया गया है जिस पर साहित्य उपलब्ध है[25]। इन सभी विधियों को अपनी-अपनी कुछ सीमाएँ हैं फिर भी ग्लूकोनाइट ही एक ऐसा खनिज है जिसका सीधा प्रयोग अवसादी शैलों की आयु को ज्ञात करने में किया जा सकता है। इसका प्रयोग 1×10^6 वर्ष से भी अधिक प्राचीन अवसादों की आयु को यहाँ तक कि प्रिकैम्ब्रियन काल

तक के, ज्ञात करने में किया गया है। विनोग्राडोव तथा तुगारीनोव[19] ने K-Ar विधि से सफलतापूर्वक सेमरी ग्लूकोनाइट (विन्ध्य परासंघ) की आयु 1045±40 मि० वर्ष ज्ञात किया है। इसी प्रकार FT विधि का, सफलतापूर्वक प्रयोग[17] भारतीय प्रायद्वीप के कुछ एक ग्लूकोनाइटी अवसादों की आयु को ज्ञात करने में किया है। इसके विपरीत Rb-Sr विधि अपनी कुछ सीमाओं के कारण विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुई है। इस प्रकार हम यह पाते हैं कि भविष्य में ग्लूकोनाइट का प्रयोग अवसादी शैलों की आयु सम्बन्धी गवेषणाओं में भारतीय भूविदों द्वारा अपेक्षित है।

भारतीय उपमहाद्वीप में ग्लूकोनाइट खनिज के अभाव वाले भौमिकीय काल

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि भारतीय उपमहाद्वीप में आरडोविशियन, सैलूरियन, डिवोनियन, कार्बोनीफेरस एवं परमियन काल में ग्लूकोनाइट खनिज पूर्णतः अनुपस्थिति है या उसका विशेष अभाव है। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है जिसका उत्तर पैलियोजोइक युग के इन कालक्रमों में भारतीय उपमहाद्वीप की पुराभौगोलिक स्थिति तथा भूगतिक प्रक्रियाओं को समझने के पश्चात् ही दिया जा सकता है।

यहाँ पर उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि पैलियोजोइक युग के इन महत्वपूर्ण संस्तरों के विगोपन भारतीय प्रायद्वीप में प्राप्त नहीं होते। यद्यपि हिमालय क्षेत्र के कुछ स्थानों पर इस काल के शैल प्राप्त हुए हैं परन्तु सामान्यतः इनके विगोपन भारतवर्ष की भौगोलिक सीमा के बाहर तिब्बत या उत्तरी बर्मा में पड़ते हैं। सागरीय जीवाश्मधारी ये अवसादी शैल एक वृहद पट्टिका के रूप में हजारा-कश्मीर, स्पिती, गढ़वाल, कुमाऊँ तथा नेपाल में कुछ-एक स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। सामान्यतः भारतीय प्रायद्वीप में विन्ध्य तथा उसके बाद के उपरि कार्बोनिफेरस काल के निक्षेपों के मध्य एक वृहद प्रांतराल विद्यमान हैं जिसका कारण विन्ध्य अवसादन के बाद के काल में भारतीय उपमहाद्वीप के इस अंचल में लगातार होने वाली पश्च पर्वतन की प्रक्रियाएँ रही हैं।

इसी बीच उपरिकार्बोनिफेरस से जुरैसिक काल के अन्त तक असागरीय प्रकृति का गोंड़वाना अवसादन भारतीय उपमहाद्वीप में चलता रहा है। मध्य कार्बोनिफेरस काल में हुई वृहद भूगतिक-हलचल "हरशिनियन" का भी प्रभाव विशेष रूप से भारत के उत्तरी अंचल पर पड़ा है। इस काल में कई स्थानों पर अवसादन प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न हुए, सागर तथा द्वीपों की स्थितियों में परिवर्तन हुए जिसके परिणामस्वरूप भारतवर्ष के अधिकांश भागों में अवसादन की गति में आई रुकावट परमो-कार्बोनिफेरस के आधार में विद्यमान विषमविन्यास द्वारा परिलक्षित होती है। परमियन काल में उत्तर में स्थित अंगारा लैण्ड तथा दक्षिण में स्थिति गोंड़वाना लैण्ड के मध्य वृहद टेथिज सागर की उपस्थिति एक उल्लेखनीय पुराभौगोलिक अभिलक्षण रही है। इस काल में हुई विभिन्न विवर्तनिक तथा पश्चपर्वतन प्रक्रियाओं के कारण जलवायु पर विशेष प्रभाव पड़ा है जिसके कारण विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं की प्रबलता क्षीण हुई प्रतीत होती है और यही कारण है कि सागरीय पर्यावरण (प्रतिक्रमण-अतिक्रमण) तथा अन्य भौगोलिक परिस्थितियों की उपस्थिति होने पर भी ग्लूकोनाइट का जनन इस काल में नहीं हो पाया है।

इसी प्रकार जुरैसिक काल में भी ग्लूकोनाइट का भारतीय उपमहाद्वीप में अभाव विचारणीय है। जुरैसिक काल में भारतीय उपमहाद्वीप में राजस्थान तथा कच्छ तथा पूर्वी तट पर हुए सागरीय अतिक्रमण विशेष उल्लेखनीय है जिनके कारण छिछले सागर में अवसादित शैलों के उत्तम निक्षेप प्राप्त होते हैं। जुरैसिक काल की पर्यावरणीय तथा पुराभौगोलिक स्थितियाँ ग्लूकोनाइट के जनन के लिए सर्वथा उचित रही हैं। अतः आशा है कि भविष्य में भारतीय उपमहाद्वीप के जुरैसिक शैलों में ग्लूकोनाइट की अन्य उपस्थितियों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होगी।
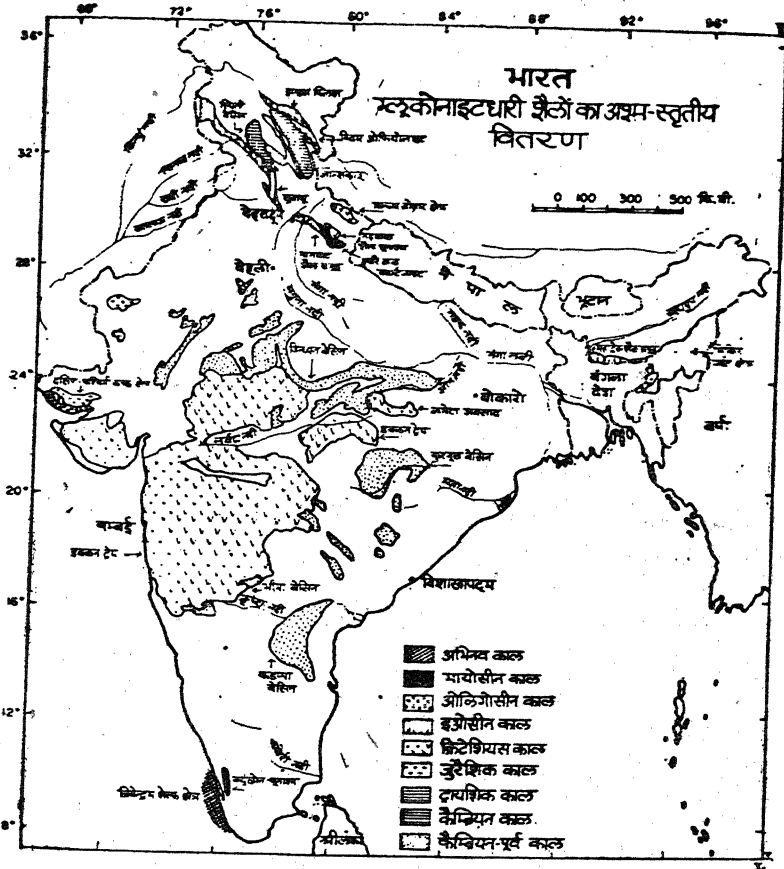
चित्र 1

भौमिकीय तथ्यों की विवेचना में ग्लूकोनाइट

भारतीय भूविदों ने ग्लूकोनाइट की उपस्थिति तथा इसके विभिन्न अभिलक्षणी गुणों के आधार पर भौमिकीय तथ्यों की बहुत कम विवेचना की है। पुरापर्यावरण की विवेचना में इसका प्रयोग तो सामान्यतः किया गया है परन्तु स्तृतीय सहसम्बन्धन, विषमविन्यास की उपस्थिति, अश्म-विवर्तनिक तथा

अन्य पश्च-पर्वतन प्रक्रियाओं तथा पेट्रोलियम स्रोतों की खोज में ग्लूकोनाइट की उपयोगिता की प्रबल सम्भावनाएँ होते हुए भी इस दिशा में किये गये प्रयासों का अभाव है। इस दिशा में सार्थक प्रयत्न अपेक्षित हैं। लेखक द्वारा उपरि ताल क्वार्टजाइट तथा शैल चूनाश्म के मध्य विषमविन्यास की उपस्थिति[23] तथा हिमालय में मध्य क्रिटेशियस (आस्ट्रीयन) पश्चपर्वतन प्रक्रिया की पहचान[24, 29] ग्लूकोनाइट की विद्यमानता तथा उसके गुणों के आधार पर की गई है।

भारतीय उपमहाद्वीप के ग्लूकोनाइट खनिज का औद्योगिक उपयोग

ग्लूकोनाइट खनिज में औद्योगिक उपयोग की विलक्षण सम्भावनाएँ विद्यमान हैं परन्तु भारतवर्ष में इस दिशा में कोई भी सार्थक प्रयोग नहीं किया गया है। भारतीय उपमहाद्वीप में प्राप्त होने वाले ग्लूकोनाइटधारी शैलों में विन्ध्य परासंघ के ग्लूंकोनाइटी बालुकाश्मों पर इस प्रकार के प्रयोग प्रारम्भ किये जा सकते हैं क्योंकि इनमें ग्लूकोनाइट की मात्रा अच्छी है। बालगोपाल तथा बनर्जी[13] ने विन्ध्य ग्लूकोनाइट के निम्नलिखित उपयोगों के लिए अपने सुझाव प्रस्तुत किये हैं :

(1) उचित उष्मीय उपचार के पश्चात् ग्लूकोनाइट का उपयोग एक उत्तम प्रकार के अवशोषी के रूप में किया जा सकता है।

(2) ग्लूकोनाइट के भंजक-आसवन से अतिशुद्ध सिलिका, पोटाश तथा लौह आक्साइट प्राप्त किया जा सकता है।

(3) ग्लूकोनाइट का प्रयोग एक सस्ते जल-उपचारक के रूप में हो सकता है।

इसी प्रकार बांदा जनपद के संग्रामपुर क्षेत्र के ग्लूकोनाइट निक्षेपों से पोटाश प्राप्त करने की प्रक्रिया को नौटियाल ने[12] आर्थिक रूप मे महत्वपूर्ण माना है।

ग्लूकोनाइट की औद्योगिक सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए कुछ ऐसे प्रोजेक्ट बनाने की आज आवश्यकता है जिससे राष्ट्रीय विकास में इस खनिज की भूमिका सार्थक हो सके।

उपसंहार

भारतीय उपमहाद्वीप में ग्लूकोनाइट खनिज के भौगोलिक तथा अश्म-स्तृतीय वितरण, इसके विभिन्न गुणों, भूवैज्ञानिक तथ्यों की विवेचना में इसकी सार्थकता तथा इसके औद्योगिक उपयोग पर जो तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि भारत में ग्लूकोनाइट खनिज पर शोध की प्रबल सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। अतः इस दिशा में संयुक्त शोध प्रयासों के लिए नवीन तकनीकों तथा संकल्पनाओं की सहायता लेकर महत्वपूर्ण भूवैज्ञानिक तथ्यों तक पहुँचने में सहायता मिलेगी।

कृतज्ञता-ज्ञापन

डॉ० विक्रम चन्द्र ठाकुर, निदेशक, वाडिया हिमालय भूविज्ञान संस्थान, देहरादून के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके सहयोग तथा उत्साहवर्धन के फलस्वरूप यह शोध पत्र तैयार हो

सका है। साथ ही मैं प्रो० महराज नारायण महरोत्रा (वाराणसी), डॉ० ए० टी० बालगोपाल (सिन्दरी), डॉ० सम्पदा जोशी (पूना), डॉ० त्रिविक्रमजी (त्रिवेन्द्रम), डॉ० जे० एन० शर्मा (डिब्रूगढ़) तथा डॉ० टी० एन० बगाती (देहरादून) का विशेष रूप से आभारी हूँ जिनके शोध पत्रों से कुछ चित्र का उपयोग किया गया है। मैं डॉ० विनोद चन्द्र तिवारी, डॉ० त्रिलोचन सिंह तथा श्रीमती अनिता सैनीको धन्यवाद प्रेषित करता हूँ जिन्होंने इस शोध पत्र की तैयारी में समय-समय पर मुझे सहयोग प्रदान किया है।

निर्देश

1. इवरन्डिन, जे० एफ०, कुरटिस, जी० एच०, ओवराडोविच, जे० तथा किस्टलर, आर०, **जिओ-किम० कास्मोकिम० एक्टा**, 1961, **23**, 78-99.
2. ओडिन, जी० एस० तथा मैटर, ए०, **सेडीमेन्टालोजी**, 1981, **28**, 611-641.
3. काजाकोव, जी० ए०, **खोम० जिमनोई० कोरे० एकेड० नाउक० एस एस एस आर, ट्रो० जिओ० खोम० कोन्फ०**, 1964, **2**, 539-551.
4. कैम्पर, ई०, **जिओलोजिस्चे जहरवूच हिज्ट**, 1982, **65**, 679.
5. कुरटिस, जी० एच० तथा रेनोल्डस, जे० एस०, **जिआ० सोसा० अमे० बुले०**, 1958, **69**, 151, 160.
6. कोरमेर, आर० एफ०, **जिआ० सोसा० अमे० बुले०** 1956, **67**, 1812.
7. खड़गवाल, ए० डी०, **नेचर**, 1966, **211**, 615-616.
8. गोल्डमैन, एम० आई०, **जिआ० सोसा० अमे० बुले०** 1921, **32**, 25.
9. टेलर, एस० ए० तथा वाइली, एस० डब्लू०, **इकोना० जिओलो०**, 1966, **56**, 1033-1044.
10. ट्रिपलोहार्न, डी० एम०, **सेडीमेन्टालोजी**, 1966, **6**, 247-266.
11. ट्रिपलोहार्न, डी० एम०, **वर्ड आयल**, 1966, **162**, 94-97.
12. नौटियाल, ए० सी०, इन "ग्लूकोनाइट : फार्म एन्ड फंक्शन" 1986, 177-196.
13. बालगोपाल, ए० टी० तथा बनर्जी, एस० के०, इन **ग्लूकोनाइट : फार्म एण्ड फंक्शन**, (ऐडिटर आर० ए० के० श्रीवास्तव) टूडे एण्ड टूमारो पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1986, 27-40.
14. मैकरे, एस० जी०, **अर्थ साइंस रिव्यू**, 1972, **8**, 339-340.
15. मैकोंचो, डी० एम०, वार्ड, जे० बी०, मैकफैन, वी० एच० तथा लेविस, डी० डब्लू०, **क्लेज एण्ड क्ले मिनिरल्स**, 1979, **27**, 339-348.

16. मैकडोगल, आई०, डुन, पी० आर०, कम्पस्टन, डब्लू०, बेब, ए० डब्लू०, रिचार्ड्स, जे० आर० तथा वोर्फिगर, वी० एम०, जर० जिओ० सोसा०आस्ट्रे०, 1965, 12, 67-90.

17. राजगोपालन, जी० तथा श्रीवास्तव, ए० पी०, इन "ग्लूकोनाइट : फार्म एण्ड फंक्शन" (ऐडिटर आर० ए० के० श्रीवास्तव), टूडे एण्ड टूमारो पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1986, 143-150.

18. राव, सी० जी०, इन "ग्लूकोनाइट : फार्म एण्ड फंक्शन" (ऐडिटर : आर० ए० के० श्रीवास्तव) टूडे एण्ड टूमारो पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1986, 57-60.

19. विनोग्राडोव, ए० तथा तुगारीनोव, ए०, 22 इंटर जिआलोकाँग्रेस, 1964, नई दिल्ली

20. वरमुन्ड, ई० जी०, बुले० अमे० एसो० पेट्रो० जिओलोजिस्ट 1961 45, 1667-1696.

21. व्रुस्ट, जे० एफ०, बुले० अमे० एसो० पेट्रो० जिओलोजिस्ट, 1958, 42, 310-327.

22. श्रीवास्तव, आर० ए० के० एवं मेहरोत्रा, एम० एन०, मिर्जापुर एवं सीधी जिलों में सोनघाटी (पश्चिमांचल) के ग्लूकोनाइटी बालुकाश्म शैल समूह का अवसादिकीय अध्ययन, **भूविज्ञान चयनिका**, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, 1981, 25-41.

23. श्रीवास्तव, आर० ए० के० तथा तिवारी, वी० सी०, इन : "ग्लूकोनाइट : फार्म एण्ड फंक्शन" (ऐडिटर आर० ए० के० श्रीवास्तव) टूडे एण्ड टूमारो पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1986, 93-116.

24. श्रीवास्तव, आर० ए० के० तथा विरदी, एन० एस०, इन "ग्लूकोनाइट : फार्म एण्ड फंक्शन" (ऐडिटर आर० ए० के० श्रीवास्तव) टूडे एण्ड टूमारो पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1986, 165-176.

25. श्रीवास्तव, आर० ए० के०, इन "ग्लूकोनाइट : फार्म एण्ड फंक्शन" (ऐडिटर आर० ए० के० श्रीवास्तव) टूडे एण्ड टूमारो पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1986, 253-267.

26. श्रीवास्तव, आर० ए० के०, कान्फरेन्स बाल्यूम, गढ़वाल यूनिवर्सिटी, श्रीनगर, 1987, 64-67.

27. श्रीवास्तव, आर० ए० के०, जिओ साइंस जरनल, 1989, 10, 175-182.

28. श्रीवास्तव, आर० ए० के०, घोष, एस० के० तथा तिवारी, बी० सी० जनरल आफ दी जिओलोजिकल सोसायटी आफ इण्डिया, बंगलौर (प्रेस में)।

29. सिन्हा, ए० के० तथा श्रीवास्तव, आर० ए० के०, हिम० जिआ०, 1978, 8, 1042-1048.

30. सिन्हा, ए० के० तथा श्रीवास्तव, आर० ए० के०, इन "ग्लूकोनाइट : फार्म एण्ड फंक्शन" (ऐडिटर आर० ए० के० श्रीवास्तव) टूडे एण्ड टूमारो पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1686 209-250.

31. स्पोलजेरिक, एन० तथा क्राफोर्ड, डब्लू० एन०, एनविरानमेन्टल जिओलोजी 1970, 2, 215-221.

32 स्पोलजेरिक, एन० तथा क्राफोर्ड, डब्लू० ए०, वही, 1979, 3, 356-363.

33. स्पोलजेरिक, एन० तथा क्राफोर्ड, डब्लू० ए०, प्रोसी० 5 क्वार्टरिनियल आई ए जी ओ डी सिम्पोजियम, 1980, II, 581-590.

34. हरजोग, एल० एफ०, पीन्सन, डब्लू० एच० तथा कोरनायर, आर० एफ०, बुले० अमे० एसो० पेट्रो० जिआ०, 1958, 42, 115-116.

35. हरले, पी० एम०, कोमायर, आर० एफ०, जे०, फेयरवाइन, एच० डब्लू० तथा पीन्सन, डब्लू० एच०, बुले० अमे० एसो० पेट्रो० जिआ०, 1960, 44, 1793-1808.

36. हरले, पी० एम०, इन "पोटैशियम-आरगान डेटिंग (ऐडिटर ओ० ए० शाइफर एवं जे० जहरिंगर), स्प्रींगर, वर्लिन, 1966, 134-151.

लेखकों से निवेदन

1. विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका में वे ही अनुसन्धान लेख छापे जा सकेंगे, जो अन्यत्र न तो छपे हों और न आगे छापे जायँ। प्रत्येक लेखक से इस सहयोग की आशा की जाती है कि इसमें प्रकाशित लेखों का स्तर वही हो जो किसी राष्ट्र की वैज्ञानिक अनुसन्धान पत्रिका का होना चाहिये।

2. लेख नागरी लिपि और हिन्दी भाषा में पृष्ठ के एक ओर ही सुस्पष्ट अक्षरों में लिखे अथवा टाइप किये आने चाहिये तथा पंक्तियों के बीच में पार्श्व संशोधन के लिये उचित रिक्त स्थान होना चाहिए।

3. अंग्रेजी में भेजे गये लेखों के अनुवाद का भी कार्यालय में प्रबन्ध है। इस अनुवाद के लिये तीन रुपये प्रति मुद्रित पृष्ठ के हिसाब से पारिश्रमिक लेखक को देना होगा।

4. लेखों में साधारणतया यूरोपीय अक्षरों के साथ रोमन अंकों का व्यवहार भी किया जा सकेगा, जैसे $(K_4FeCN)_6$ अथवा $\alpha\beta_1\gamma^4$ इत्यादि। रेखाचित्रों या ग्राफों पर रोमन अंकों का भी प्रयोग हो सकता है।

5. ग्राफों और चित्रों में नागरी लिपि में दिये आदेशों के साथ यूरोपीय भाषा में भी आदेश दे देना अनुचित न होगा।

6. प्रत्येक लेख के साथ हिन्दी में और अँग्रेजी में एक संक्षिप्त सारांश (Summary) भी आना चाहिये। अंगेजी में दिया गया यह सारांश इतना स्पष्ट होना चाहिये कि विदेशी संक्षिप्तियों (Abstract) में इनसे सहायता ली जा सकेंगे।

7. प्रकाशनार्थ चित्र काली इंडिया स्याही से ब्रिस्टल बोर्ड कागज पर बने आने चाहिये। इस पर अंक और अक्षर पेन्सिल से लिखे होने चाहिये। जितने आकार का चित्र छापना है, उसके दूगुने आकार के चित्र तैयार होकर आने चाहिये। चित्रों को कार्यालय में भी आर्टिस्ट से तैयार कराया जा सकता है, पर उसका पारिश्रमिक लेखक को देना होगा। चौथाई मूल्य पर चित्रों के ब्लाक लेखकों के हाथ बेचे भी जा सकेंगे।

8. लेखों में निर्देश (Reference) लेख के अन्त में दिये जायँगे।
   पहले व्यक्तियों के नाम, जर्नल का संक्षिप्त नाम, फिर वर्ष, फिर भाग (Volume) और अन्त में पृष्ठ संख्या। निम्न प्रकार से—

   फॉवेल, आर० आर० और म्युलर, जे०, जाइट फिजिक० केमि०, 1928, **150**, 80।

9. प्रत्येक लेख के 50 पुनर्मुद्रण (रिप्रिन्ट) मूल्य दिये जाने पर उपलब्ध हो सकेंगे।

10. लेख "सम्पादक, विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका, विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग. इलाहाबाद-2" इस पते पर आने चाहिये। आलोचक की सम्मति प्राप्त करके लेख प्रकाशित किये जाएँगे।

प्रबंध सम्पादक

प्रधान सम्पादक
स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती

Chief Editor
Swami Satya Prakash **Saraswati**

सम्पादक
डा० चन्द्रिका प्रसाद
डी० फिल०

Editor
Dr. Chandrika Prasad

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र,
एम० एस-सी०, डी० फिल०

Managing Editor
Dr. Sheo Gopal Misra,
M. Sc., D. Phil., F. N. A. Sc.

मूल्य

वार्षिक मूल्य : 30 रु० या 12 पौंड या 40 डालर
त्रैमासिक मूल्य ; 8 रु० या 3 पौंड या 10 डालर

Rates

Annual Rs. 30 *or* 12 £ *or* $ 40
Per Vol. Rs. 8 *or* 3 £ *or* $ 10

Vijnana Parishad
Maharshi Dayanand Marg
Allahabad, 211002
India

प्रकाशक :
विज्ञान परिषद्,
महर्षि दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद-2

मुद्रक : प्रसाद मुद्रणालय,
7 बेली ऐवेन्यू,
इलाहाबाद

विषय-सूची